योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 33 जनवरी-फरवरी 2001 अंक 10-11

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

❐

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

❐

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

❐

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव
विनोद कुमार शर्मा

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	85-00
द्विवार्षिक	रु०	150-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

❐ अमृत कण.. 2

❐ विशेष लेख
अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज... 3

❐ सम्पादकीय.. 8

❐ महाभाव के उद्दीपन के लिये योग की अपरिहार्यता
डा० विजय सिंह.............................. 10

❐ कविता
वेद प्रकाश शर्मा.............................. 13

❐ सिद्धों की कृपास्थली और सिद्धयोग की साधना प्रणाली का एक परिदृश्य
प्रो० चन्द्रहास शर्मा........................ 14

❐ हे गुरुदेव ! तुम्हें कोटिशः नमन
राजेश कुमार श्रीवास्तव.................. 17

❐ प्रभु महिमा
कु० रजनी शर्मा.............................. 24

❐ शिष्य संताप निवारक श्रीगुरुदेव
अवनीश कुमार.................................. 25

❐ सुदामा कथा : एक आध्यात्मिक व्याख्या
रुद्रदत्त चतुर्वेदी.............................. 27

❐ ध्यान क्या है ?
ब्र० ओमप्रकाश.............................. 29

❐ मानव-जीवन
वैद्य मूलचन्द्र भारद्वाज.................. 34

❐ जीवन तत्त्व साधन........................ 38

❐ ❐ ❐

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33
अंक 10

जनवरी
2001

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह
पृथ्वयप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्।।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् ६/२

भावार्थ

जिस परमेश्वर से यह सम्पूर्ण जगत् सदा व्याप्त है; जो ज्ञान स्वरूप परमेश्वर निश्चय ही काल का भी महाकाल सर्वगुण सम्पन्न और सबको जानने वाला है, उससे ही शासित हुआ यह जगत्रूप कर्म विभिन्न प्रकार से यथायोग्य चल रहा है और ये पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश भी उसी के द्वारा शासित होते हैं। इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये।

अमृत कण

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते।।

विदुरनीति ६/३१

निरर्थक कलह करना मूर्खों का काम है, बुद्धिमान पुरुष को इसका त्याग करना चाहिये। ऐसा करने से उसे लोक में यश मिलता है और अनर्थ का सामना नहीं करना पड़ता है।

❋ ❋ ❋

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्।।

मुण्डकोपनिषद ३/१/६

सत्य ही विजयी होता है, झूंठ नहीं। क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्य से परिपूर्ण है। जिसमें पूर्णकाम ऋषिलोग वहाँ गमन करते हैं ; जहाँ वह सत्य स्वरूप परब्रह्म परमात्मा का उत्कृष्ट धाम है।

❋ ❋ ❋

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्।।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् १/१/१४

अपने शरीर को नीचे की अरणि और प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर ध्यान के द्वारा निरन्तर मंथन करते रहने से साधक छिपी हुई अग्नि की भाँति हृदय में स्थित परमदेव परमेश्वर को देखे।

❋ ❋ ❋

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भ मिवापगाः।।

श्रीमद्भागवत् ६/१/१८

जिस प्रकार मदिरा से भरे घड़े को समस्त नदियाँ मिलकर भी पवित्र नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार भगवद् विमुख मनुष्य को तप-यज्ञ आदि साधन भी पवित्र नहीं कर सकते हैं।

विशेष लेख

वितर्क और विचारानुगत समाधि

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ध्यान योग के अभ्यासी को अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। हमारा एक गृहस्थी बच्चा काश्मीर की यात्रा पर श्रीनगर गया हुआ था। वहाँ कोई महात्मा मिल गये। वह अमरनाथ जा रहा था। हमारे उस गृहस्थी बच्चे ने उस महात्मा से कहा- महाराज ! आप को तो ब्रह्मराक्षस लगा हुआ है। महात्मा जी ने कहा-हाँ, मुझे ब्रह्मराक्षस तो लगा हुआ है। उस महात्मा ने गायत्री के कई पुरश्चरण किये हुये थे। किन्तु फिर भी ब्रह्मराक्षस से पीछा नहीं छुड़ा पा रहा था। महात्मा जी ने कहा तुमने जब यह जान लिया है कि मुझे ब्रह्मराक्षस है तो कृपया इससे छुड़ा दीजिये। उस बच्चे ने कहा-'जब तक आप अमरनाथ से वापिस नहीं आ जाते तब तक मैं इसे रोक लेता हूँ'। इतना काम उसने कर दिया। यह हमारे एक साधारण गृहस्थी बच्चे ने कर दिखाया। अस्तु।

मैंने तुम्हें सम्प्रज्ञात समाधि के विषयों में समझाया था संक्षेप में फिर बतलाता हूँ। ध्यान करने वाले को जब यह अनुभव होता रहे **शिवोऽहम् शिवकेवलोऽहम् कृष्णोऽहम्।** उसे इस बात का बोध ही न रहे कि मैं रामदत्त, देवदत्त या चन्द्रदत्त नामक कोई व्यक्ति हूँ। यदि ध्यान करने वाले को निरन्तर यह भासित होता रहे, हमेशा यह वृति बनी रहे कि मैं शिव हूँ, राम हूँ तो इसका नाम है- **सम्प्रज्ञात समाधि।**

'तदेवार्थमात्रनिर्भासम् स्वरूपशून्यमिव समाधि'।

वही ध्येय-जब अर्थमात्र से भासित होता रहे अपना आपा भी खत्म जैसा हो जाये, उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। एक साधक देखता है- **शिवोऽहम् रामोऽहम्** यह कौन देखता है ? ऐसा देखता है ध्यान करने वाला रामदत्त, चन्द्रदत्त आदि। वह यह भूल जाता है कि मैं रामदत्त, चन्द्रदत्त हूँ। उसे केवल यही याद रहता है शिवोऽहम्। मैं शिव हूँ, कृष्ण हूँ। वह भगवान शिव की आकृति में लीन हो जाता है ध्यान के प्रभाव से उसका मन इष्ट के मन में मिल जाता है। बुद्धि इष्ट की बुद्धि में मिल जाती है। उस समय वह शिवरूप हो जाता है यही सम्प्रज्ञात है। उसे आभास तो होता रहता है लेकिन शिव की आकृति का ही। इसलिए वह मानता है शिव हूँ, कृष्ण हूँ आदि-आदि। दीखना या अनुभव होना बोध होते रहना सम्प्रज्ञात समाधि का विषय है। योग दर्शन बतलाता है **'वीत राग विषयंवा चित्तम्'**। जो वीतरागी पुरुषों का ध्यान करते हैं वे तदाकार हो जाते हैं। उनके अर्थात् इष्ट के आकार की वृत्ति को तदाकार वृत्ति कहते हैं। इस समय हमारी वृत्ति मदाकार वृत्ति है मैं अपनी शक्ल को जान रहा हूँ मैं रामदत्त, चन्द्रदत्त हूँ चन्द्रमोहन हूँ इत्यादि। तदाकार में बराबर इष्ट की आकृति में लीन हो जाते हैं। इसका अभ्यास निरन्तर बढ़ता रहे तो

कालान्तर में वही होगा जो शिव के साथ होता है, हर हरकत जो उनके लिए (शिव) कीजाती है। कोई जैसे भगवान शिव पर जल चढ़ा रहा है कोई पूजा कर रहा है योगी अनुभव करेगा मुझ पर जल चढ़ाया जा रहा है। मेरी पूजा की जा रही है इत्यादि इत्यादि। बाद में भगवान शिव जिस निर्बीज समाधि में रहते हैं योगी भी उसी समाधि को प्राप्त हो जायेगा। मैं शिव हूँ उसका यह ज्ञान भी समाप्त हो जायेगा। इसके बाद उसकी स्थिति **'तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्'** वाली हो जायेगी। यदि कोई पूछे कि निर्बीज समाधि में आत्मा की स्थिति कहाँ होती है तो इसका उत्तर है। **'चितिशक्ति यथा कैवल्ये'**। कैवल्य में चित्शक्ति कैसे हुआ करती है ? यह किसी ने बताया ही नहीं है क्यों कि वहाँ न मन पहुँचता है न बुद्धि पहुँचती है। चित्त अहंकार वहाँ कोई नहीं पहुँचता असम्प्रज्ञात में नाम रूप सब खत्म हो जाते हैं। निर्बीज में योगी अपने स्वरूप में आ जाता है। उसके लिये तब वही बात लागू होती है।

'यत्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूषि पश्यन्ति' जो आँखों से नहीं देखा जा सकता, जिसके तेज से आँखों को देखने की ताकत मिलती है। **यन्मनसा न मनुते येन आहुर्मनोमतम्'** जिस का मन से मनन नहीं किया जा सकता मन जिसकी ताकत से मनन करने वाला होता है- वही ब्रह्म है। इस प्रकार से मैंने संक्षेप में तुम्हें सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात का भेद बता दिया है। अब मैं तुम्हें सम्प्रज्ञात समाधि के अवान्तर चार भेद बताता हूँ। सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेदों में प्रथम है **वितर्कानुगत समाधि। 'वितर्कः चित्तस्यालम्बने स्थूला भोगः'** वितर्कानुगत समाधि में चित्त के एकाग्रता का लक्ष्य स्थूल पदार्थ होते हैं। लेकिन इस बात को याद रखो समाधि अन्तर्मुखी होगी। आभ्यन्तर धारणा, आभ्यन्तर ध्यान तथा आभ्यन्तर समाधि होगी बाहर नहीं बनेगी। भीतर से फिर बाहर बनेगी वह बात अलग है। वितर्कानुगत समाधि के लिये पतंजलि देव कहते हैं- **'चित्तस्यालम्बने स्थूलाभोगः'**।

किस विषय को लक्ष्य बनायेगा यह तो गुरूदेव ही बतायेंगे साधक को। गुरूदेव ही उपदेश करेंगे कि कहाँ पर और किस का ध्यान करना है। इसलिए स्थूल विषय के चिन्तन को वितर्कानुगत समाधि कहते हैं। स्थूल विषय क्या है ? यह पहाड़ स्थूल विषय हैं, नदियाँ स्थूल विषय हैं। अग्नि जल रही है। आवाज सुनाई दे रही है। यह स्थूल विषय है। जब योगी वितर्कानुगत समाधि में होता है, तो उसे अग्नि जलती हुई दिखाई देती है। नदी नाले बड़े-बड़े पहाड़ दिखाई देते हैं। पंचभूतों से बनी स्थूल चीजें दिखाई देंगी। कई-कई साधक ध्यान में कुछ न कुछ दीखते रहना ही उत्कृष्ट मानते हैं। इसलिए वे चाहते हैं पहाड़ देखें, नदी नाले समुद्र देखें भगवान राम, कृष्ण आदि के रूप देखें। यदि यह स्थिति हटती है तो वह मानते हैं कि हमारा ध्यान लगना बन्द हो गया है। किन्तु उन्हें यह याद रखना चाहिए कि ये मोटे नजारे हैं **'वितर्कः चित्तस्यस्यालम्बने स्थूला भोगः'** इसे ही **सवितर्क समाधि** कहते हैं। निर्वितर्क में स्थूल दृश्य तो दिखाई नहीं देगें किन्तु स्थूलों के सूक्ष्म आभोग दिखाई देंगे। स्थूल भूतों के अन्तरंग भाव हैं उनका अनुभव होगा जैसे पृथ्वी है सवितर्क में स्थूल पृथ्वी दिखाई देगी; किन्तु निर्वितर्क में सूक्ष्म पृथ्वी का आभास होगा, उसी में मन लय होगा।

सूक्ष्म पृथ्वी वह है जो इसकी सत्ता है। **'तत्र गन्धवती पृथ्वी'** के अनुसार गन्ध पृथ्वी का बीज है। निर्वितक समाधि में योगी को पंच महाभूतों की तन्मात्राओं का साक्षात्कार होता है मायने सूक्ष्म पृथ्वी, सूक्ष्म जल, सूक्ष्म वायु आदि-आदि। अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का साक्षात्कार होगा जो महाभूतों के रूप की अपेक्षा सूक्ष्म विषय हैं। न गन्ध का कोई रूप है, न रस का कोई रूप है, न रूप का कोई रूप है न शब्द का कोई रूप है। तात्पर्य यह है कि जिस समय योगी की तन्मात्राओं में समाधि होती है तो वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इसमें चित्त का विषय स्थूल न होकर सूक्ष्म हो जाता है। इस प्रकार योगी वितर्कानुगत समाधि में पृथ्वी की दिव्य वस्तुओं को देखता है ! पृथ्वी में रहने वाले सिद्ध पुरुषों का तथा दिव्य आत्माओं का दर्शन होता है। इसका अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते योगी विचारानुगत की ओर बढ़ता है। विचारानुगत समाधि है-**'सूक्ष्मो विचारः'**।

विचारानुगत समाधि में तन्मात्राओं तथा तन्मात्राओं से युक्त लोकों को देखता है। सवितर्क समाधि में भूमण्डल को देखा किन्तु सविचार में तन्मात्र लोगों को देखेगा, स्वर्ग एवं लोक लोकान्तर को देखेगा। इस प्रकार से शब्द-स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का साक्षात्कार इस समाधि में करता है विचारानुगत समाधि में देवलोक, साकेत लोक आदि-आदि दिखाई देते हैं। जिसके अन्दर स्थूल महाभूतों का अभाव रहता है। पृथ्वी, जल आदि स्थूल रूप में न होकर सूक्ष्म रूप में होते हैं वहाँ दिव्य तनुधारी देवता रहा करते हैं। देवता अजर अमर होते हैं। इस पृथ्वी लोक में हमारे शरीर में पृथ्वी का भाग कम हो जाये तो हम बीमार हो जाते हैं। उसी प्रकार से जल का एवं अग्नि का भाग कम हो जाये तो बीमार, वायु काम न करे तो मनुष्य मर ही जाता है। यहाँ पंच महाभूत हमारे शरीर में स्थूल रूप से हैं। देवलोकों में पंचमहाभूत स्थूल में न होकर सूक्ष्म रूप में है। उन सूक्ष्म तन्मात्राओं में जो मन लीन होता है उसको विचारानुगत समाधि कहते हैं। साधक को चाहिये कि वह उकताये नहीं; धैर्य से साधना करता रहे। हमें पतंजलि देव के आदेश को सामने रखना चाहिये-**'सतु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिर्भवति'**। दीर्घकाल तक और निरन्तर अभ्यास करने से ही समाधि दृढ़ होती है।

मुझे एक घटना याद आ गई। एक बार हम योग प्रचार में एटा जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ हमने अपने व्याख्यान में बताया कि पाँच लाख **नमः शिवाय** के जाप करने से भगवान शिव के दर्शन होते हैं। **स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः स्वाध्याय** से इष्ट देव का साक्षात्कार होता है यह योग का सिद्धान्त है। एक व्यक्ति सत्संग में हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहने लगा- महाराज जी ! आपको झूठ नहीं बोलना चाहिये। हमने पूछा-भाई। हमने क्या झूठ बोला है ? वह कहने लगा- आप कहते थे कि पाँच लाख शिव मन्त्र के जप करने से भगवान शिव के दर्शन होते हैं किन्तु मुझे तो हुआ नहीं। उसने मुझे अपनी एक कापी दिखायी। उसमें लिखा था अमुक दिन मैंने शौच जाते हुये इतने मन्त्र जपे, अमुक दिन मुकद्मा में जाते समय इतना मन्त्र जपा, अमुक दिन अमुक काम करते हुये इतना मन्त्र जपा। इस तरह से उसने अपने पाँच लाख से ऊपर जाप का हिसाब बता दिया। देखा ! जाप का तरीका यह नहीं है। **'दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़भूमिः'** का

तात्पर्य समझना चाहिए। साधक साधना को दीर्घकाल तक लम्बे समय तक करे निरन्तर लगातार प्रतिदिन करे। सत्कारपूर्वक करे, आदर पूर्वक करे। यही साधन मेरा कल्याण करने वाला है इस भावना से साधना करे तथा इष्ट देव का ध्यान करते हुए जाप करे तो दर्शन संभव होते हैं, अन्यथा नहीं। अभ्यास करते-करते साधक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भूमिकाओं में प्रवेश पाता है। सवितर्क और निर्वितर्क में योगी को खास अन्तराय नहीं आते इससे आगे सविचार में अन्तराय आया करते हैं। मनुष्य लोक के नजारे खत्म हो जाते हैं लोक लोकान्तर का दर्शन होना प्रारम्भ हो जाता है। विचारानुगत समाधि से सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ। एक बार मैं चार छः महीने के लिए हरिद्वार में चण्डी के पहाड़ पर अनुष्ठान कर रहा था। वहाँ मेरी एक महात्मा से मित्रता हो गई। वह वैष्णव साधू था। बात-चीत के प्रसंग में उसने कहा-'यहाँ रामगिर नाम का रोहतक का एक गंवार भी रहता है वह यहाँ तो लम्बी दाढ़ी रखकर समाधि में बैठा रहा है और इन्द्रपुरी में जाकर स्वर्ग की छोकरियों का नाच देखता रहता है' वस्तुतः उस साधु की यह विचारानुगत समाधि थी जिसमें वह इन्द्रपुरी में चला जाता था और नृत्य आदि देखता था। इसी अवस्था में आकर्षण होता है, प्रलोभन इसी समाधि में आते हैं। साधक इस अवस्था से बच निकला तो आगे खतरा नहीं है। मैंने तुम्हें पहले भी बताया है कि योगी अपने शक्तियों का आप मालिक होता है वह किसी के आधीन नहीं रहा करता। इसलिये जब वह मनुष्य लोक को पार कर देव लोक में पहुँचता है तो वहाँ के स्वाभिमानी देवता उसे रोकते हैं। देवताओं का दायरा सीमित होता है वे नहीं चाहते कि कोई हमसे आगे चला जाये इसलिए सविचार समाधि में देवता उसके सामने विघ्न उपस्थित कर दिया करते हैं। सविचार समाधि के अन्दर उसे मिथ्या दर्शन अर्थात् भ्रान्ति दर्शन होने लगता है। मुझे भ्रान्ति दर्शन की एक घटना याद आई। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभु जी हरिद्वार से पंजाब मेल में अमृतसर जा रहे थे। श्री मुल्खराज जी महाराज तथा कुछ और गुरू भाई साथ में थे। उसी गाड़ी में एक आदमी सवार था। उस का सिर कई जगह से फूटा हुआ था और खून बह रहा था। उसे ऐसी हालत में देखकर प्रभु जी कहते जाते थे-

लाख चौरासी के जीव को लाख कहो समझाय।
हम 'खेंचे सत्लोक को पोड्यो यमपुर जाये।

साथ वाले यह तो समझ ही रहे थे कि प्रभु जी इसे देखकर ही ऐसा कह रहे हैं। उन्होंने उसी व्यक्ति से पूछा-क्या कारण है तुम्हारा सिर फूटा है और प्रभु जी हंस रहे हैं। उसने अपनी सारी बात विस्तार से बतानी शुरू की। उसने बताया-हम पाँच व्यक्ति हरिद्वार चण्डी के पहाड़ पर योग सीखने गये थे। वहाँ कोई सिखाने वाला नहीं मिला इसलिए वे चार तो घर वापिस लौट गये किन्तु मैं अकेला ही वहाँ रुक गया। वहीं जंगल में एक सुन्दर बगीचा था किनारे पर एक घड़ा रखा था। आदमी कोई दिखाई नहीं देता था। मैं पास के झरने से घड़े में पानी लाकर पौधों को सींचने लगा और वहाँ रहता रहा। सात दिन के बाद एक महात्मा आये वे अपने साथ पत्थर लाये हुये थे उनसे वे मुझे मारने लगे। मुझे कई चोटें आईं। मैं पास के झरने के पास ही पड़ा रहा। उस पानी के लगने से

मेरे सब घाव ठीक होने लगे मैं वहाँ पानी पीता रहा। एक सप्ताह बाद फिर वह महात्मा आये और बोले। अच्छा ! तू अभी तक मरा नहीं है ? इसके बाद महात्मा जी ने मुझे एक फल खाने को दिया। इसके खाने से शरीर के घाव तुरन्त ही ठीक हो गये। फल के प्रभाव से उसका ध्यान लगने लग गया। उसकी स्थिति सविचार समाधि की बन गई। उसे ध्यान में दिखाई दिया कि घर में उसकी स्त्री रो रही है। धन का अभाव है। खाने पीने की वस्तुओं की कमी हो रही है। उसने यह भी देखा कि घर में धन गढ़ा हुआ है ध्यान में ऐसा देखने के बाद उसने सोचा–मैं वह धन निकाल कर दे आऊँ। महात्मा जी तो एक महीने बाद समाधि से उठेंगे तब तक मैं वापिस लौट आऊँगा। वह ऐसा विचार ही कर रहा था कि महात्मा जी समाधि से उठ गये। इसके बाद महात्मा जी कई दिन तक भी समाधि में दोबारा नहीं बैठे। उस व्यक्ति ने कहा भी महाराज ! अब की बार आप समाधि में नहीं बैठ रहे हैं ? महात्मा ने कहा अब की बार तो हमारा कुछ और ही विचार है। हमारा विचार यह है कि अबकी बार हम तुम्हें ही समाधि में बैठा दें। क्योंकि तू भी तो हमारा बच्चा है। इसलिये हमारा यह संकल्प बना है कि हम तुम्हें एक माह के लिये समाधि में बैठा दें। वह सोचने लगा। अरे ! मेरी स्त्री तो धन के अभाव में मर जायेगी। महात्मा जी ने पूछा-क्या सोच रहा है ? वह कहने लगा–महाराज कुछ नहीं सोच रहा हूँ। **'गुरोरग्रे न वक्तव्यं** असत्यम् च कदाचन्' गुरूदेव के सामने कभी असत्य नहीं बोलना चाहिये। महात्मा जी ने कहा–बैठ जाओ समाधि में। वह कहने लगा–महाराज जी मैं तो आप की सेवा करूँगा। महात्मा जी कहने लगे अरे नहीं सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है। तू समाधि में बैठ। लेकिन वह बैठा नहीं। कई दिन से नींद का मारा हुआ था उसको नींद आ गई। महात्मा जी ने उसे नींद में ही अपनी योग शक्ति से उठाकर हरिद्वार में गंगा किनारे फैंक दिया।

प्रातः जब सूर्योदय हुआ तो उसकी नींद खुली वह घर गया और उसने देखा कि उसकी स्त्री खूब आनन्द में है उसे किसी प्रकार से धन का अभाव नहीं है। वह लौटकर फिर चण्डी पहाड़ पर उस महात्मा को ढूँढने गया किन्तु बहुत ढूढने पर भी उसे न वह बगीचा मिला न ही वह महात्मा। उस व्यक्ति ने अपने भाग्य को कोसते हुये अपने सिर को पत्थर पर मार-मार कर लहू-लुहान कर दिया और इसी हालात में अपने घर वापिस जा रहा था। इसको कहते हैं भ्रान्तिदर्शन। यह समाधि में एक बड़ा विघ्न होता है। योगी जब सविचार समाधि की उत्कृष्ट स्थिति पर पहुँचता है तब ऐसा हुआ करता है। किन्तु जो गुरूदेव के अनन्य निष्ठ बालक होते हैं उनकी गुरूदेव रक्षा किया करते हैं। जहाँ इष्ट होता है वह अनिष्ट नहीं होता है। उस व्यक्ति को अपने गुरूदेव पर पूर्ण विश्वास नहीं था इसलिये यह दुर्गति हुई। हमारे पास भी एक रमणी गिर नाम का साधु आया था। वह नागा साधु चन्दौसी के पास बरैनी उदेसा का रहने वाला था। घर का नाम उसका राधेश्याम था। श्री प्रभु जी की कृपा से उसकी ध्यान स्थिति ऊँची बन गई थी। देवताओं का प्रलोभन तथा भ्रान्ति दर्शन होने लगा। मन्मुखता की, और योग मार्ग से भटक गया। यह प्रसंग मैंने कई बार तुम्हें बताया है। हमारे 'योग सिद्धान्त' पुस्तक में भी इसका विवरण दिया हुआ है। इसलिये तुम सब अपने को योग परायण बनाओ। ध्यान योग का अभ्यास करो। इसी से सब का कल्याण होगा।

***

सवितृदेव की कृपा और ध्यान योग

भगवान सूर्य के बिना जगत की कल्पना ही असंभव है सूर्य ही जगत को प्रकाश व उष्णता प्रदान करते हैं। वेदों में भगवान सूर्य को 'जगत की आत्मा' कहा गया है। सूर्य का वैदिक नाम सविता है। सविता का अर्थ है उत्पन्न करने वाला। समस्त प्राणियों के भीतर संचरित होने वाला जो प्राणी तत्व है वह सूर्य का ही अंश माना गया है। अर्थात् सूर्य ही प्राण रूप से सब प्राणियों में विद्यमान है। समस्त विश्व को प्रकाशित करने के कारण यह देवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। बिना सूर्य के अन्न तथा वनस्पतियाँ उत्पन्न नहीं हो सकती। मानव जीवन में भी सूर्य की महनीय भूमिका के कारण ही अनादिकाल से हमारे पूर्वज ऋषियों ने सूर्य की पूजा की है। बाह्य जगत में सूर्य के प्रकाश से वस्तुओं का प्रकाशन होता है उसी प्रकार से सूर्य हमारे भीतर प्राणरूप अग्नि से इन्द्रियों को प्रकाशित कर वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होते हैं। प्राणाग्नि के कारण ही हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ अपने अपने विषय शब्द, स्पर्शादि को ग्रहण करने में सक्षम होती हैं। वस्तुओं का प्रकाशन करने के कारण ही अध्यात्म भाषा में इन्द्रियों की ही 'देव' संज्ञा है। प्राण और सूर्य के अंश अंशी सम्बन्ध को जान कर ही भारतीय मनीषियों ने अनादिकाल से सूर्य की कई रूपों में उपासना की है। जिन मन्त्रों या छन्दों से सूर्य की उपासना की जाती है उनमें गायत्री छन्द या मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान कृष्ण ने **'गायत्री छन्द सामहम्'** कहकर इसकी महनीयता का संकेत दिया है। **'गायन्** त्रायते इति गायत्री अर्थात् जो अपने उपासक की रक्षा करती है उसका नाम गायत्री है। गायत्री का जाप करने वाले की सब प्रकार से रक्षा होती है यह तथ्य हमारे पुराणों व स्मृतियों में खुले शब्दों में प्रकट की गई है। गायत्री को ही 'सावित्री' भी कहते हैं। जिस मन्त्र से सविता (सूर्य) की उपासना की जाये वह सावित्री नाम से कही जाती है।

स्मृतियों तथा पुराणों का आदेश है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को विधिवत् यज्ञोपवीत धारण कर प्रतिदिन दोनों सन्ध्या के समय गायत्री का जाप अवश्य करना चाहिये। यदि कोई ऐसा नहीं करता है तो वह उच्च वर्ण में पैदा होने पर भी शूद्र के समान ही है। गायत्री के जाप से पाप तो नष्ट होते ही हैं साथ-साथ बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ भी मिल जाती हैं। गायत्री साधना करके ही विश्वामित्र जैसे ऋषि, ब्रह्मर्षि जैसे सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हुये हैं।

शास्त्रोक्त ढंग से गायत्री का अनुष्ठान करने पर साधक धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पदार्थ पा जाता है। गायत्री छन्द के चौबीस अक्षर हैं। छन्द में जितने अक्षर होते हैं उतने लाख जाप करने से एक पुरश्चरण होता है इस प्रकार गायत्री का चौबीस लाख जाप करने से एक पुरश्चरण होता है। गायत्री उपासक अपने जीवन में कई-कई पुरश्चरण कर लिया करते हैं जिनके लिये गायत्री कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष बन जाती है। भूत-प्रेत आदि उपद्रवों को दूर करने में गायत्री अचूक साधन है।

सवितृदेव की कृपा प्राप्त करने के लिये उनकी प्रार्थना एवं ध्यान करने का क्रम उपनिषद् काल से ही प्रारम्भ हुआ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् के दूसरे अध्याय में साधक सवितृदेव से प्रार्थना करता है–हे सवितृदेव ! आप हमारे मन और प्राण को बाह्य विषयों के प्रकाशन से रोककर परमात्मा में ही लगाने की कृपा करें। जब तक सवितृदेव की कृपा नहीं होती है, तब तक साधना करते रहने पर भी साधक पूर्णानन्द की ओर नहीं जा पाता है। वह संसार चक्र में ही फँसा रह जाता है। वस्तुतः सवितृदेव ही सम्पूर्ण यज्ञों का विधान करने वाले हैं और इस प्रकार सब कुछ जानने वाले वे साक्षिस्वरूप सर्वत्र विद्यमान हैं।

सवितृदेव की आराधना का तात्पर्य यह नहीं है कि हम भगवान सूर्य देव को जल ही चढ़ावें अथवा सुगन्धित द्रव्य समर्पित करें। योगी लोग सम्पूर्ण सृष्टि की शक्तियों को अपने पिण्ड में ही मानकर पिण्डस्थ देवों की आराधना करते हैं। जप साधना एवं ध्यान साधना एवं प्राणायाम आदि क्रियाओं से योगाग्नि को प्रकट कर सम्पूर्ण क्लेश एवं कषायों का नाशकर स्फुट प्रज्ञालोक को प्राप्त करना ही सवितृदेव की आराधना है। आत्मदेव की आराधना को ही सूर्य देव की साधना योगी लोग मानते हैं। भगवान् गीता में इस बात की घोषणा करते हैं कि जब वे अपने योगयुक्त भक्तों पर कृपा करते हैं तो वे उनके भीतर ज्ञान का दीपक जला देते हैं जिससे उनके अन्दर का अन्धेरा समाप्त हो जाता है और साधक परमात्म दर्शन का अधिकारी बन जाता है। अन्तःकरण में अखण्ड दीप जलाना ही योग साधना का लक्ष्य है जो सतत् स्वाध्याय एवं ध्यान साधना से ही संभव हो सकता है अन्य क्रिया-कलापों से नहीं। इसलिये योगी को बाहर विद्यमान सूर्य एवं अन्दर विद्यमान आत्म ज्योति में अभेद सम्बन्ध मानकर इनकी पूजा करनी चाहिये।

वस्तुतः देखा जाये तो पक्षी आदि का आकाश में उड़ना सिद्धि के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता क्योंकि सिद्धि को सामर्थ्य विशेष मानने पर हर जाति के प्राणी में ऐसी विलक्षणता है जो दूसरी जाति में नहीं होती। मानव जाति को ही लीजिये। वह साधारण मानव भी दूसरे जीवों से विलक्षण है और अपने बुद्धि के प्रभाव से अपनी क्षमताओं के कारण दूसरे प्राणियों की अपेक्षा सामर्थ्य शाली है। पाँचवें प्रकार की सिद्धि समाधि जन्या होती है। मन की एकाग्रता व संयम के परिणाम स्वरूप होने वाली सिद्धियाँ सामाजिक सिद्धियाँ हैं। योगी का लक्ष्य कैवल्य प्राप्ति है इसके लिये उसे समाधिजा सिद्धि की ही आवश्यकता होती है। समाधिजा सिद्धि से चित्त सिद्ध होता है। कैवल्यपाद में भगवान पतंजलि जी ने एक सूत्र दिया है **तत्र ध्यानजमनाशयम।** अर्थात् समाधि अथवा ध्यानयोग से सिद्ध किया हुआ चित्त ही वासना रहित होता है। जन्म औषधि आदि से सिद्ध हुआ चित्त वासना युक्त रहा करता है। इसलिये ध्यान से सिद्ध चित्त ही कैवल्य प्राप्ति में अधिकारी बनता है। अन्य नहीं। किन्तु जन्म औषधि आदि से सिद्ध किया हुआ चित्त भी योगी के लिये सहायक बनता है। इस प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करके योगी की योग निष्ठा बढ़ती रहती है। मनोबल बढ़ता रहता है। योगी का चित्त निरन्तर विश्वास एवं उत्साह से युक्त रहा करता है और वह निरन्तर साधनारत रह सकता है।

* * *

"महाभाव के उद्दीपन के लिये योग की अपरिहार्यता"

डा० विजय सिंह

पूर्ण सत्ता अखण्ड, अबाधित एवं अद्वैत है। अंश रूप में हम सभी खण्डित, बाधित एवं द्वैत-भाव भावित हैं। हमारे स्वरूप का सम्बन्ध सब शक्तियों के साथ उस पूर्ण सत्ता से भिन्न नहीं है। भगवान पातंजलि जी का योगसूत्र **"तदा द्रष्टु स्वरूपे अवस्थानम्"** उसी अखण्ड सर्व शक्ति सम्पन्न, सर्वज्ञान सम्पन्न, सर्वभावापन्न, आनन्दघन का नाम स्वरूप है।

शक्तियों के परिचय से स्वरूप का संधान असम्भव है। परन्तु शक्ति के बिना स्वरूप का परिचय पाना भी असम्भव है। अतः योग में ज्यों-ज्यों साधक अन्तरभूमिकाओं को प्राप्त करता जाता है, उसे अपने अंतः निहित शक्तियों का भी परिचय मिलता जाता है। योग ऐश्वर्य स्वरूप की ही शक्तियाँ हैं। अतः सर्व शक्तियाँ स्वरूप में आश्रित हैं। स्वरूप का जिन शक्तियों से भेद-सम्बन्ध है उनको जड़-शक्ति (भौतिक शक्ति) कहा गया है। शास्त्र ने उन शक्तियों को जो आत्म आश्रित हैं उन्हें चित्-शक्ति कहकर परिभाषित किया है। अंतः एवं बाह्य सम्पूर्ण नानात्व चित का ही विलास है। जो योग मार्ग के अवलम्बन से ही ज्ञातव्य है। चिद्-शक्ति अत्यन्त रहस्यमयी है। वह अखण्ड सत्ता बिन्दु रूप से सत् है चिद् रूप से बिन्दु का स्पंदनीय व्यवहार है और परिणामतः वह व्यवहार आनन्दःस्वरूप है। अतः सत्-चिद्-आनन्द ही हमारा स्वरूप है। चित् एवं इसका प्रसार आनन्दमयी ज्योतिः स्वरूपा है। सत् के स्पन्दन से ज्योति का विस्तार है।

आनन्दांश की शक्ति में विलक्षणता है। भावों के भेद विभव हैं, पर चिद् वैचित्र्य रहित हैं। अतः साधना से जो कुछ प्राप्त होता है वह समर्थ गुरू की कृपा से साधक को स्वतः स्वल्प समय में प्राप्त हो जाता है। उनकी कृपा से गुप्त प्रकृति का रहस्य सहज ही जाग उठता है। भाव प्रकृति न जाग्रत होने पर श्री प्रभु के अन्तरंगता एवं उनकी नित्यलीला में प्रवेश का अधिकार नहीं मिलता। यह आनन्द शक्ति ही प्रीति या राग का पर्याय है। योग द्वारा स्वरूप संधान के निकट पहुँच कर सद्गुरू में प्रणति से साधक को परमानन्द लाभ होता है। अन्यथा मात्र स्थूल शक्तियों के विक्षेप से साधक शुष्क एवं चिद् प्रभावी बना रहता है।

इस उपरोक्त तथ्यों का खुलासा श्री गुरुदेव भगवान के अपने वृन्दावन प्रवास में अगड़धन्ता पर श्री महाप्रभु जी द्वारा कृपा दान की कथा से प्रकट होता है।

श्री प्रभु का नित्य धाम आनन्दमयी स्वरूप शक्ति का राज्य है। यह कालातीत है। वहाँ परिकर रूप में महाकाल काल की क्रिया करते हैं। बहिर्मुखता काल की धारा में प्रकृति संगता से भटकने का ही नाम है। बहिर्मुखता में चिदशक्ति जड़ शक्ति संयोजन से भवार्णव का निर्माण करती है। ठीक इसी प्रकार वृत्तियों के निष्पन्द होने पर एवं सद्गुरू कृपा दोनों बात होने पर चिन्मय धाम में

प्रवेश मिलता है। भेद है केवल इतना कि नित्यधाम में श्री प्रभु की लीला का आनन्द मिलता है, वहीं रोग-शोक, जरा, मृत्यु, क्षुधा, प्यास एवं सर्वप्रकार की मलिनता का अन्त है।

जगत में सभी कोई खोजता है आनन्द ! परन्तु सर्व प्रकार से पाता है दुःख। अविद्या के प्रभाव से आत्मविस्तृत जीव आनन्द से असंख्य कोस दूर दौड़ता रहता है। सच तो यह है कि संसार के सुख देने वाले प्रतीत वस्तु हमारी मानस एकाग्रता न होने के कारण छलता रहता है। इस छलावा से निकलने का एकमात्र उपाय श्री सद्गुरू प्रदत्त मंत्र शक्ति का अवगाहन एवं सतत् योगाभ्यास है।

योगाभ्यास से साधक को स्वरूपशक्ति अथवा चित्कला का ज्ञान होने लगता है। कला के क्रमिक विकास से ही शक्ति की विलक्षणता प्रकट होती है। शास्त्र में सत्शक्ति को **सन्धिनी कला**, चित् शक्ति को **संवित कला** एवं आनन्दशक्ति को **ह्लादिनी कला** बताया गया है। जैसे दूध को औंटे जाने पर उसके स्वाद में परिवर्तन होते होते रबड़ी और मावा में रूपान्तरण होता है वैसा ही समझना होगा कि सत् का ही रूपान्तरण चिद् एवं आनन्द के रूप में होता है।

जिस साधक में चित्कला का विस्तार सद्गुरू कृपा से अत्यन्त होता है उसे ज्योति ही ज्योति दिखाई देती है। उसे संसार में दृश्य वस्तुओं का दर्शन नहीं होता।

मुझे एक घटना अपने सवाई धाम की स्मरण है। आज से बीसियों वर्ष पूर्व श्री गुरुभवन एवं गुफा के बीच में खड़ा था। मेरे पास मेरे श्रद्धेय गुरुभाई श्री रमेश चन्द दीक्षित जी का छोटा बेटा खड़ा था। समय सुबह का दस-ग्यारह बज रहे होंगे। उस बच्चे ने मुझसे कहा अंकल देखिये उधर गुफा की तरफ कितनी रोशनी है वह आते हुये एक आश्रम वासी की ओर दिखाकर कहा कि वे केवल चेहरे से दिखाई पड़ रहे हैं उनका नीचे का भाग उस रोशनी में नहीं दिखाई पड़ रहा है। मुझे ऐसा कुछ प्रतिभास नहीं हुआ। मुझे वे ब्रह्मचारी पूरी-पूरी सहज रूप से दिखाई पड़ रहे थे। परन्तु उस बच्चे में सद्गुरु कृपा से चित्कला उस समय क्रियाशील थी अतः उसे स्थूल जगत तिरोहित हो केवल ज्योतिर्बोध हो रहा था।

आत्म-दर्शन

समग्र एकाग्रता से योगी अपने हृदयाकाश में जिस चैतन्य पुरुष या अन्तरात्मा का दर्शन पाता है। वे पुरुष ही देहयन्त्र के यन्त्री हैं जिनके प्रभाव से कायिक यन्त्र कार्य करता है। सामान्य प्राणी देहात्म बोध से बद्ध है अतः उसे आत्म साक्षात्कार हेतु अन्तर्मुख होना पड़ता है। स्वरूपावस्था आत्म पुरुष रूप ही है। आगे चलकर जीव में ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति होती है। तब माया उसके अधीन होती है। यही **योगैश्वर्य** है। यह भी चित्कला की ही महिमा है। परन्तु इतने पर भी जड़ सम्बन्ध का पूरा समापन नहीं होता। परन्तु यदि महाभाव का अनुशीलन हो तो वृत्ति की बाह्य अवस्था में भी श्री प्रभु के भगवद् देह की अनुभूति पाते हैं।

अतः सद्गुरू साधना की धारा में सहजो बाई आदि ने सद्गुरू की चिदानन्द द्वारा गठित जीवन्त मूर्ति में ही ईश्वर भगवान से भी बढ़कर चिद्-कला की सम्पूर्णता का अनुभव किया था।

"हरि को तजूँ, गुरु को न विसारूँ"

चित्कला के पूर्ण अभिव्यक्ति से स्वरूप-शक्ति का पूर्ण प्रकाश ह्लादनी में होता है। यह केवल कृपा साध्य है।

ब्रह्मानुभूति अनुभूति- हीन चित्स्वरूप में स्थिति का ही नाम है। यह वाणी व मन के परे है। ब्रह्मानुभूति संवितशक्ति का प्रकाश है। इस प्रकाश में ज्ञान एवं आनन्द पूर्ण है परन्तु दृश्य का परस्पर भेद नहीं है।

ब्रह्म-परमात्मा-भगवान

ब्रह्म से शून्य की उत्पत्ति एवं शून्य से सृष्टि का विकास हुआ है। ब्रह्म अगोचर है परन्तु शून्य-सृष्टि में प्रतिबिम्ब रूप से गोचर परमात्मा के रूप में हुये। यह सब दृष्टा के द्वारा अनभूत हुआ। व्यष्टिगत रूप में यह शून्य हुआ हृदय और सृष्टि हुआ देह। समाधि निर्विजल्प में शून्य,-स्थित जिसमें ब्रह्म ज्योति रूप परमात्मा हृदयाकाश में दर्शन देते हैं ऐसी अवस्था में देह रहते हुये भी देह का मान समाधिस्थ को नहीं रहता। यह देह बोध ही परमात्मा के दर्शन का प्रतिबन्धक है। परन्तु देह न रहने पर भी परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। इस मानव शरीर की महत्ता इसीलिये बताया गया है।

निर्विकल्प में ब्रह्म दर्शन (वृत्ति निरोधावस्था) सविकल्प रूपी अत्यान्तिक वृत्ति की एकाग्रता में परमात्म दर्शन परन्तु महाभाव वृत्ति-वैचित्र्य से भगवद्-दर्शन होता है। अनुभवी संत-सिद्धों ने भगवद्-दर्शन की प्रक्रिया का जो वर्णन किये हैं वह इस प्रकार से है।

साधना से प्रथम वृत्ति का उपशम होता है। इस निरुद्ध दशा में महाशून्य में ज्योति उदय होती है। ये ही ज्योतिघन परमात्मा है। यही भगवद्धाम है। यह जगत् वा सृष्टि से अतीत है। ऐसा मानना है कि सृष्टि का अधिष्ठान ब्रह्म है। सृष्टि के कारण हैं परमात्मा व उनकी योगमाया। भगवान सृष्टि एवं माया से अतीत है। सद्गुरू भगवान हैं। सद्गुरू सत्ता के किंचित कृपा होने से जीव अपरोक्ष ब्रह्मानुभूति लाभ करके माया के प्रभाव से मुक्त होता है।

* * *

2001 : अभिनन्दनं नव-वर्षे

(१) अतीतगर्भे हि समाविविक्षुः, प्रतीक्षमाणोऽस्ति पुराणवर्षः।
निवर्तमानोऽस्ति द्विसहस्रवर्षः, एकोत्तराय वर्षाय द्विसहस्रकाय।।

(२) किं स्यात्तु कालोऽगतिकः कदाचित्, कलं कलं वा च पलं पलं तथा।
प्रवर्द्धमानो नितरां समीक्ष्यते, नो बाधमानोऽस्ति कदापि केन।।

(३) कालो ह्यमूल्यो बलवान सदैव, सहायमातनुते स सत्कृतः।
क्षणं क्षणं नो क्षपणीयमस्य, वृथा, सुकार्येषु नियोजनीयः।।

(४) कालो यथा वर्द्धत एव वर्द्धते, प्रवर्द्धतां नो मतिरुज्ज्वला तथा।
सर्वोऽपि भद्रान भवेत् तु सन्त्वेत्, सर्वं वयं तत् समुपाश्रयामहे।।

(५) तस्यापि कालस्य भवेध ईश्वरः, कालेश्वरः सोऽस्ति महेश्वरो वा।
सदा समर्च्योऽस्ति सदाशिवः सः, श्रीमन्नमोऽस्तु भवते नववत्सरेऽस्मिन्।।

सद्भावी-विद्वज्जनानुचरः
द्वारकाप्रसाद शर्मा

कविता

वेद प्रकाश शर्मा सहारनपुर

गुरुदेव जब अपने ही घर में दिखा दी खुदाई
काबा का सजदा कौन करे ?
जब दिल में इष्ट देव सनम हो,
फिर गैर की पूजा कौन करे ?
प्रभु तू बर्फ गिरा मैं जल जाऊँ,
तेरा हूँ तुझ में मिल जाऊँ,
मैं करूँ खता और तुम बख्शो
ये रोज का झगड़ा कौन करे ?
हम मस्त हुये बेवाप दापिये,
साकी की नजर के सदके ये,
अंजाम की जाने कौन खबर
पी लिया तो तौबा कौन करे ?
आबाद हो या बर्बाद करें,
अब उनकी नजर पर छोड़ दिये
उनका था उनको सौंप दिया
दिल देके तकाजा कौन करे ?
मेरे दिल में अजल से कुंड भरे
पी लूँ जब चाहे भर-भर के
बिन पीये मैं मस्ती में चूर रहूँ
मयखाने की परवाह कौन करे ?
गुरू जी ! आप सामने हो मैं सिजदा करूँ
फिर लुत्फ है सिजदा करने का
मैं और कहीं तुम और कहीं
यह नाम का सिजदा कौन करे ?

सिद्धों की कृपा स्थली और सिद्धयोग की साधना प्रणाली का एक परिदृश्य

प्रेषक-प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

सिद्धयोग वह महायोग है जिसमें जीवन जगत और सभी प्रकार की साधनाओं का सारसर्वस्व सन्निहित है। **'सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।'** अर्थात् बिना सिद्धों की कृपा के वास्तविक रूप से कोई योगी नहीं हो पाता; वेष रचना या सम्पत्ति का आडम्बर भले ही प्राप्त हो जाये। बिना सिद्धों की करुणाकृपा के 'सिद्ध विद्या' जिसे योग नाम से कहा जाता है, वह प्रकाशित नहीं होती। सिद्धों की करुणाकृपा से जो योग प्राप्त होता है वह सभी चक्रों के जागरण द्वारा तीनों ग्रन्थियों का विभेदन कर देता है। मनबुद्धि चित्त अहंकार का समाधान हो जाता है। जीवन में चिदानन्द और दिव्य चेतना का अवतरण हो जाता है। यह पूर्ण योग है, अतः इसको प्राप्त करने की शर्त भी बड़ी है। सर्वस्व सद्गुरुदेव के चरणों में समर्पित कर देने पर सर्वस्व प्राप्त हो जाता है। संसार के जन्ममृत्यु के बन्धन सदा-सदा के काटने का मार्ग सिद्धयोग के अतिरिक्त कोई अन्य कैसे हो सकता है ? अन्य प्रकार की साधना में आगमोक्त शब्द ज्ञान पर आधारित है, जबकि सिद्धयोग विवेकजन्य ज्ञान पर आधारित है। सद्गुरुदेव के तीव्र शक्तिपात से जब अन्तर्चक्षु का उन्मीलन होने लगता है तो स्वतः आसन, बन्ध, मुद्रायें, प्राणायाम, मंत्रजप, ध्यान और समाधि की क्रियायें होने लगती हैं। अभ्यास द्वारा करने पर एक स्थिति में अहंकार ही पुष्ट होता है। पर शक्तिपात रूपी सद्गुरुदेव की करुणाकृपा से चितिशक्ति के जागरण से अहंकार विगलित होता जाता है और अर्न्तदृष्टि द्वारा विमल ज्ञान प्रकाशित होता जाता है। 'इस भूमिका के बाद अगली ये भूमिकायें और उनकी साधना पद्धतियाँ उन सद्गुरुदेव की कृपा शक्ति से अहर्निश स्वतः प्रकट होती चलती हैं। जिससे साधक दृढ़ निश्चय और उत्साह से साधना पथ पर तीव्र संवेग के साथ आरूढ़ होता जाता है। जन्म जन्मान्तरों के अनेक विध संस्कार एक ही जन्म में पूरे होकर कैवल्य स्थिति प्राप्त होती है।

इस प्रकार के सिद्धान्तों की चर्चा हमारे योग एवं तंत्र के शास्त्रों में वामाम्नाय, दक्षिणाम्नाय तथा ऊर्ध्वामानाय सम्प्रदायों के तत्त् शास्त्रों में विस्तार से मिलती है। शास्त्रों की बातों पर तब तक विश्वास नहीं होता, जब तक उन भूमिकाओं पर आरूढ़ साधकों को प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य न मिले।

आनन्दकन्द महाप्रभु श्रीरामलाल जी महाराज एवं अनेक हृदय कमल में अनन्य प्रेमाभक्ति के कोष में समासीन सद्गुरुदेव अनन्तश्री विभूषित योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज तथा इस योग सृष्टि के रचयिता अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परम प्रभु श्री सदाशिव की अहेतुकी करुणाकृपा से यत्र तत्र योग की शास्त्रवर्णित भूमिकाओं का उनके कृपापात्र बच्चों में साक्षात दर्शन हो रहा है। यह उन करुणासागर की अपार कृपा ही है कि सतयुग में प्राप्त होने वाली स्थितियों को वे दयासागर कलियुग के पापमलायतन, शौचाचार विवर्जित अविद्याग्रस्त जीवों को इस समय प्रदान कर रहे हैं। जिनके अन्तश्चक्षु नहीं खुलपाये वे अपने मानसम्मान और सम्पत्ति को स्वायत्त करने के चक्कर में अपने मनुष्य शरीर को लक्ष्यच्युत करने में लगे हुए हैं। उनकी दृष्टि अत्यन्त लौकिक है। उनके लिए गुरुजी ने शरीर छोड़ दिया है। अब वे हमें नहीं देखते। जिन्हें ज्ञानचक्षु दिये हैं वे साधक उनकी उपस्थिति प्रतिपल और सर्वत्र अनुभव करते रहते हैं।

देवतात्मा हिमालय की उपत्यका में हिमाच्छादित पर्वतमाला की मनोहर गोद में अधिष्ठित एक शक्तिपीठ आजकल आश्चर्य का धाम बना हुआ है। जहाँ अनेकों साधकों के ऊपर सिद्धों की अपूर्व कृपायें रात-दिन हो रही है। उनकी कुण्डलिनी शक्ति जगाकर सिद्धों द्वारा वन्दित परम सिद्ध स्वयं अपनी उपस्थिति का प्रमाण दे रहे हैं। जिससे सभी आँखें खोलकर सत्य को पहचान सकें। यह स्थान वही कांगड़ा, की छोटी सी पहाड़ी पर स्थित 'श्री सदाशिव सिद्धयोग मन्दिर' नाम से आज विख्यात हो गया है, जहाँ महाप्रभु श्री रामलाल जी अपने अनन्य शिष्यों के साथ कभी वहाँ पहले रहे थे। यह वही स्थान है, जहाँ से होकर 'जयन्ती माता' के मन्दिर के मार्ग की सीढ़ियाँ थी। जयन्ती माता का मन्दिर **'जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा शिवा क्षमा धात्री, स्वाहा स्वधा नमो स्तुते।**।-इन नौ देवियों के शक्तिपीठों में प्रथम है। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी इन पर्वत श्रृंगों पर अभी भी विचरते रहते हैं। यह सिद्धों का प्रिय पीठस्थल है जब श्री प्रभु जी अपने प्रिय शिष्यों- योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज, योगिराज श्री गोपालानन्द जी आदि को लेकर जयन्ती माता के मन्दिर की दुर्गम चढ़ाई चढ़ते हुए जा रहे थे तो मार्ग में मिलने वाले मन्दिर के दर्शनार्थियों ने तुरीयावस्था में स्थित होने के कारण आखें बन्द कर मस्ती में डगमगाते कदमों से चलते हुए श्री प्रभुजी के योगीबच्चों को देखकर आशंका व्यक्त की थी कि ये नशे में धुत्त लगते हैं। सम्भलकर चल कहाँ पा रहे। कैसे दो-तीन घण्टे में तय होने वाली सीधी पगडंडी की चढ़ाई वाले स्थान की दूरी तय कर पायेंगे। श्री प्रभुजी ने उनकी शंका का उत्तर दिया था कि इनका ड्राइवर बहुत होशियार है। अतः इनको कुछ नहीं होगा और अन्य दर्शनार्थियों से पहले मन्दिर पर पहुँच लेंगे। हुआ भी ऐसा ही। मन्दिर से वापिस नीचे लौटते समय फिर उन्होंने वही शंका व्यक्त की थी। उस पर श्री प्रभुजी ने अपने दोनों बच्चों (श्री मुलखराज जी एवं श्री गोपालानन्द जी) को पहाड़ी की चोटी पर खड़ा कर धक्का दिया। उनमें से एक चीते की तरह छलांग लगाते हुए सभी यात्रियों से पूर्व पहाड़ के नीचे खड़े मिले। दूसरे चील की तरह हाथ फैलाकर उड़ते हुए क्षणभर में सभी यात्रियों से पहले पहाड़ी से नीचे पहुँच गये। इस दृश्य को देखकर सभी यात्री आश्चर्य चकित रह गये और मन ही मन सोचने लगे लगता है ये कोई पहुँचे हुए सिद्धपुरुष हैं।' आज उन्होंने कुछ वर्षों के अन्तराल के बाद अपने दैवीय विधान के लिए पुनः अपने प्रिय स्थान कांगड़ा को चुना है। अपनी दिव्य लीलाओं के निमित्त पुरी परिवार को इस काम की सेवा का माध्यम चुना है। श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम पर जब पुरी परिवार दर्शनार्थ आता था तब श्री गुरुदेव प्रायः कहा करते 'हमें पूरी पूरी चाहिये, आधी-अधूरी नहीं।' इन शब्दों का अर्थ उस समय लोगों की समझ में ठीक-ठीक नहीं आता था। आज सिद्धों की वही अमोघ वाणी सार्थक हो रही है। श्री पुरीजी के परिवार का निःस्वार्थभाव से श्रीसद्गुरु देव की सेवा और अहैतुकी भक्ति में पूर्णसमर्पण है। तो दूसरी ओर श्री गुरुदेव की कृपा शक्ति भी पूर्णरूपेण साधकों को उच्च ध्यान और समाधि की स्थितियाँ प्रदान कर रही है।

इन पंक्तियों के लेखक को उस सिद्धपीठ के दर्शन का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक ओर जहाँ सिद्धयोग की वास्तविकता को समझने का अवसर मिला वहाँ यह देखकर भी आश्चर्य हुआ कि जो कुंए के मेंढक हैं उन्हें समुद्र का अनुमान भी नहीं हो सकता। वे देखकर भी विश्वास

नहीं कर रहे और जानकर भी अनजान बने हैं। साधकों में होने वाली कुण्डलिनी की क्रियायें- विचित्र प्रकार के आसन, प्राणायाम, मंत्रोच्चारण, कम्प, स्वेद, स्वर विक्रिया- उछलना-कूदना आदि देखकर वहाँ के स्थानीय लोग मन्दिर में अन्दर प्रवेश करने से डरने लगे हैं। उन्हें डर है कि कहीं कुछ हो न जाय। क्योंकि कुछ लोगों के साथ ऐसा हो चुका है। कुछ लोग कहते हैं कि मन्दिर में भूतप्रेत बुराहाल कर देते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि मन्दिर में कुछ बच्चों को पागल बनाकर बैठा दिया गया है। कुछ पर ऐसा तंत्र-मंत्र किया है कि वे अब घर बार छोड़कर वहीं बैठ गये हैं। उनकी चीखें सुनाई पड़ती हैं। आदि-आदि न जाने जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आती हैं सम्भवत: उन कृपानिधान की लीला कुछ पुण्यात्माओं को ही वहाँ आने का अधिकार प्रदान करना चाहती है। इसीलिए उनके मन में संसारी बुद्धि के संशयात्मक संस्कार उभार दिये हैं। यह सच है कि जो एक बार वहाँ आ जाता है। उसके मन में वहाँ के प्रति एक विचित्र आकर्षण हो जाता है। ऐसे ही एक साधक हैं-श्री अमिलपुरी, जिन्हें अब लोग 'महात्माजी' के नाम से सम्बोधित करते हैं। सन् १९९९ जनमाष्टमी के दिन से वे उसी सिद्धपीठ में रात-दिन साधनारत हैं। पेण्ट शर्ट से लेकर भोजन सब कुछ अपने आप छूट गया है। धौलागिरी की बर्फीली हवायें उनके निर्वस्त्र शरीर का स्पर्श पाकर अपने को धन्य मानती हैं। वहाँ का बर्फ सा शीतलजल दिन में कई बार उनको, स्नानाभिषेक कराता है। एक कोपीन, मूँज की मेखला और खड़ाऊँ धारण कर मौन होकर साधनारत है। ऐसा वे स्वयं नहीं कर रहे। कोई अदृश्य शक्ति उन्हें समाधि का अभ्यास करा रही है और उनके संस्कारचक्र को क्षीण करती जा रही है। इस रहस्य का उद्घाटन उन्होंने योगसाधना शिविर के अन्तिम दिन ३० दिसम्बर २००० को सार्वजनिक रूप से उपस्थित होकर अपने लिखित सन्देश को स्वामी जी से पढ़वाकर किया था जितने सत्संगी उस दिन वहाँ उपस्थित थे उनके बारे में बताया कि वे उनके जन्मजन्मान्तरों के संस्कारी थे। जिसका भुगतान श्री प्रभुजी ने उन सबको किसी न किसी बहाने वहाँ बुलाकर करवा दिया है। कोई रोग के बहाने वहाँ गये थे। कोई विशेष प्रकार की पूजा करने, कोई किसी कामना को लेकर व कोई वहाँ क्या आश्चर्य जनक हो रहा है- यह सब देखने। वहाँ पहुँचने पर ही पता चलता है कि वहाँ का दर्शन उन सर्वशक्तिमान की दिव्य योजना के अधीन है। अपनी मर्जी से वहाँ तक पहुँचने में सैकड़ों बाधायें खड़ी हो जायेंगी। यहाँ से विश्व में योग की ज्योति पुन: जलेगी। जिससे भारत विश्व गुरु के पद पर पुन: प्रतिष्ठित होगा तथा हिन्दू धर्म व सनातन धर्म का विशुद्धरूप प्रकट होगा। वहाँ की रचना के बारे में श्री प्रभु जी की आज्ञा से महात्मा जी द्वारा लिखे गये सन्देश को लोक कल्याणार्थ सिद्धयोग के पाठकों के हितार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इस स्थान के बारे में कहा गया है वहाँ हजार-हजार वर्ष के योगिराज जिनकी छ:-छ: महीने की समाधि होती है, कालान्तर में वहाँ आयेंगे। तीन महीने में एक बार समाधि से उठने वाले श्री गुरुदेव के गुरूभाई योगिराज श्री हरिहरानन्द जी महाराज भी उस स्थान पर आयेंगे। ऐसी स्थिति में सामान्य जनों का वहाँ प्रवेश सम्भव नहीं रहेगा। अभी भी सत्संग भवन में स्नान करके केवल धोती पहन कर जाने के आदेश के निर्वाह करने के डर से बहुत लोग वहाँ नहीं जा पाते।

(शेष अगले अंक में)

हे गुरुदेव ! तुम्हें कोटिशः नमन

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

गीताजी के दिव्य श्लोक पूज्य गुरुदेवजी के जीवन चरित्र की सतत धारा के साथ-साथ अपनी सत्यता की प्रमाणिकता प्रस्तुत करते जा रहे थे।

तत्र तं बुद्धिसंयोगंलभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरूनन्दन।।

अर्थात्–वहाँ उस पहले शरीर में संग्रह किये हुये बुद्धि के संयोग को अर्थात समबुद्धिरूप योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है। और हे कुरूनन्दन ! उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है।

अपने विद्यालय के अनुशासित वातावरण में रह कर, पूज्य गुरूदेव जी शिक्षा के साथ-साथ पूर्वकृत समबुद्धियोग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त करते जा रहे थे। परिणाम स्वरूप विद्यालय में ही अचानक अपने प्राणधन योगेश्वर श्रीकृष्णजी की अनेकानेक कृपाओं को अनुभूत करने लगे थे जो उनका पूर्वजन्म की साधना के अन्तर्गत भगवान श्री कृष्ण से किया गया निर्मल प्रेम ही था।

"पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।।"

अर्थात्–वह श्रीमानों के घर में जन्म लेने वाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उसके पहले के अभ्यास से ही निःसन्देह भगवान की ओर आकृषित किया जाता है। तथा समबुद्धिरूप योग का जिज्ञासु भी सकाम कर्मों को उल्लंघन कर जाता है।

यहाँ पर 'योगभ्रष्ट' का अर्थ पतन से नहीं है। 'पतन' का अर्थ अपनी स्थिति से गिर जाना है अथवा पुण्यों के क्षीण होने का परिणाम ही 'पतन' है। गुरूदेव की आज्ञा का उल्लंघन करते हुये जो कुमार्गी हो जाते हैं वे अवश्य ही पतन को प्राप्त होते हैं। 'पतन' का स्पष्ट अर्थ है। योग की उच्चतम भूमियों से गिरकर (काम, क्रोध, लोभ, गुरू अवज्ञा आदि के कारण) शक्ति विहीनता की पूर्व स्थिति को प्राप्त हो जाना। 'योग-भ्रष्ट' का अभिप्राय उत्तरोत्तर योगोत्थान के अचानक विश्रृंखलित हो जाने अर्थात बीच में ही रुक जाने से है। इसके कई कारण हैं। अनेक प्रकार के दैवीय अन्तरायों (क्लिष्ट संस्कारों के अचानक आगमन से उत्पन्न विषम परिस्थितियों में) के कारण योग शक्ति का उत्तरोत्तर विकास अवरुद्ध हो जाता है। जैसे किसी योगाभ्यासी का शरीर किसी दुर्घटना के अन्तर्गत अथवा किसी जटिल बीमारी के क्लिष्ट संस्कार उदय होने पर, इस लायक नहीं रह पाता कि योग साधनाएँ सम्पन्न कर सकें। तब उसे 'योगभ्रष्ट' कहा जायेगा किन्तु 'पतनगामी' नहीं। 'योग भ्रष्ट' होने से सम्बन्धित दूसरे कारण के अन्तर्गत योग की उत्तरोत्तर भूमिकाओं में चढ़ते हुये समय में योगाभ्यासी का अचानक शरीर पूरा होने से भी योग ऐश्वर्य का सतत विकास योग की पराकाष्ठा प्राप्त करने से पूर्व ही अवरुद्ध हो जाता है। अन्तिम श्वासों के रुकने के साथ ही तत्काल अर्जित

योग शक्तियों का विकास भी रुक जाता है। इस प्रकार के वैराग्यवान पुरुष- **''अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम।''**-के अनुसान ज्ञानवान योगियों के कुल में ही जन्म लेते हैं। तथा-**''एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीद्रशम्।।''**-के अनुसार इस प्रकार का जन्म संसार में निःसन्देह अत्यन्त दुर्लभ है।

गण्डकी नदी के किनारे घोर तपस्या के फलस्वरूप गुरूदेव पूर्णरूप से वैराग्यवान हो चुके थे। अचानक उनका शरीर पूरा हो जाने से वे योग विद्या के परम् लक्ष्य को स्पर्श करने से वंचित रह गये। उनकी योग ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली सतत् प्रगति को अचानक अवरुद्ध होना पड़ा। पूज्य गुरुदेव जी ने ध्यानावस्था में देखा कि वे अपने अत्यधिक वृद्ध शरीर से निकल करके आकाश में भ्रमण कर रहे हैं। वस्तुतः यह पुराने शरीर के त्याग और नये जन्म को पाने का संकेत था। पूज्य गुरुदेवजी ने स्वयं कहा है-''यह भावी जन्म की पूर्व सूचना थी। अस्तु।'' गीताजी के नियमानुसार ही अत्यन्त वैराग्यवान गुरूदेव जी को योगियों के कुल में ही जन्म मिला। वैराग्यवान पूज्य गुरूदेव जी के परम् पूज्य पिता श्री देवीराम जी 'आर्य समाज' के सच्चे उपासक और योगपरक जीवन वाले थे। उन्होंने निज बालक 'चन्द्र' के जीवन में अमृत घोल देने के लिए, शैशवकाल से ही सुन्दर परमाचरण से युक्त सुसंस्कारों को बालक की चित्तभूमि में बो दिया था। उन्होंने किस प्रकार अपने बालक के प्रारम्भिक जीवन को, योगारुढ़ संघर्षमय जीवन की अति महान अनन्त ऊँचाइयों को छू लेने के लिए, कितने अनुपम और दृढ़ संस्कारों से भर दिया था-यह वर्णन से परे है। पूज्य गुरुदेव जी बतलाया करते थे-छोटी अवस्था में जब मैं रात को अपने पिता की गोद में सो जाया करता था तो वे मेरे कान में कहा करते थे-**'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि।'**

अपने पिताश्री से ऐसे व्यक्तित्व सम्बर्द्धक सुसंस्कारों को प्राप्त करने के कारण ही उनका व्यक्तित्व सदा लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बना रहा। वे निज जीवन यात्रा की अत्यधिक कठिन-क्रूर परिस्थितियों में भी अपने आलीशान योग मार्ग से कभी विचलित नहीं हुये, इसके पीछे पूज्य पिताश्री का ही प्रबल पुरुषार्थ कार्य कर रहा था।

इस प्रकार **'यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरूनन्दन'** (हे कुरूनन्दन ! इसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है) परम पवित्र गीताजी के उक्त सिद्धान्तानुसार परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करने हेतु पूज्य गुरूदेव जी के हृदय में तीव्रतम संवेदनाऐं उठने लगी थीं।

यूँ तो पूज्य गुरूदेव जी को बचपन से ही भगवान श्री कृष्ण की कृपाओं का अनुभव होता रहता था। वे मन ही मन इन कृपाओं का आनन्द लेते रहते थे और उनकी सुमधुर कल्पनाओं में खोये रहते थे किन्तु अब स्थिति ये थी कि विद्यालय में श्री कृष्ण जी की दिव्य कृपाओं का अनुभव होते ही उनकी ईश्वरानुसंधान (कृष्ण प्राप्ति) की जिज्ञासा प्रबल हो जाती थी। विद्यालय का इतना उत्कृष्ट वातावरण उन्हें प्राप्त हुआ था जिसे प्राप्त कर पाना विश्व में दुर्लभ ही था किन्तु अचानक ही उन्हें अपनी शिक्षा के प्रति अरूचि पैदा होने लगी थी। संस्कार निर्माण के इस दुर्लभ विद्यालय के परमोद्देश्य का आदर करते हुये भी, विद्यालय उन्हें अपने आत्मोत्कर्ष के मार्ग में एक भारी अन्तराय

के रूप में नजर आने लगा। एक तरफ उनका श्री आचार्य जी के प्रति निर्मल प्रेम तथा दूसरी तरफ भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रजी के प्रति उनका अति विलक्षण विशुद्ध प्रेम। न तो वह श्री आचार्य जी के हृदय को ही 'विद्यालय-त्याग' की सूचना देकर तोड़ना चाहते थे और त्रिजगत पावन अखिलात्मा श्री कृष्ण जी के दर्शनों से वंचित भी रहना नहीं चाहते थे। इस विलक्षण मानसिक उलझन की परिस्थिति में अन्ततः सैकड़ों वर्ष की पूर्वजन्म की उनकी कृष्ण भक्ति के प्रबल संस्कारों ने ही अपना पूर्व सुनिश्चित प्रभाव दिखलाया। यही सत्य है कि पूर्वजन्मों के प्रबल संस्कारों के शुभाशुभ भोगफल के विरुद्ध किसी का भी हठ कार्य नहीं करता।

पूज्य गुरुदेव हर समय कृष्णमय अपूर्व आनन्द में हर समय खोये रहते। प्रकृति के कण-कण में उन्हें कृष्ण ही नजर आते। हर प्रकार की ध्वनि में उनको कृष्ण नाम की सुमधुर, झंकार ही सुनाई पड़ती। उन्हें लगता जैसे सभी दिशाओं से कृष्ण प्रेम के असंख्य झरने, उनके रूप माधुर्य का गुणानुवाद करते हुये विश्व को आनन्दित करने हेतु फूट पड़े हैं। जब भी वे श्री कृष्ण जी की दिव्य अनुभूतियों प्रेरणाओं से मुक्त होते तो एकदम उदास हो जाते और श्री कृष्ण दर्शन के लिए अति अधीर होकर छटपटाने लगते। पूज्य गुरुदेवजी के स्वाभाविक सहज, स्वभाव-व्यवहार में भारी परिवर्तन होने लगा था। आचार्य जी के अनुशासित सतर्क नेत्रों ने बालक के असामान्य व्यवहार को तुरन्त पहचान लिया था।

पूज्य गुरुदेव भगवान विद्यालय छोड़ना चाहते थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा श्री कृष्ण दर्शन की भूख आत्मतृप्ति हेतु अधिक व्याकुल और अधीर कर रही थी। किन्तु इन सब बातों के बावजूद भी मानवता-कृतज्ञता के धर्मों से वे किसी भी प्रकार विमुख नहीं थे। वे अपने आचार्य श्री विश्व बन्धुजी का हृदय नहीं दुखाना चाहते थे। आखिर किस मुंह से कहें कि वे आपका प्यारा विद्यालय हमेशा के लिए छोड़ना चाहते हैं। भारी उलझन में पड़ गये थे।

टन-टन-टन.........पौने चार बजे छुट्टी की घण्टी बज चुकी थी। सभी ब्रह्मचारी पंक्तिबद्ध, हल्का-हल्का सा शोर-शराबा करते हुये अपने-अपने कक्षों से निकल पड़े। सुनसान सा पड़ा विद्यालय का मैदान ब्रह्मचारियों की भीड़ से एकदम हराभरा जीवन्त सा नजर आने लगा किन्तु थोड़ी ही देर में पुनः गहरे सन्नाटे से भर गया। सभी ब्रह्मचारी अपने-अपने व्यक्तिगत कक्षों में पहुँच चुके थे। और अपने छोटे-पूरे कार्यों में लग गये।

सभी ब्रह्मचारी जल्दी में थे, व्यायामशाला में शामिल होना था। व्यायाम के बाद जैसे ही छः बजे की घण्टी बजी सभी ब्रह्मचारी यज्ञशाला में एकत्रित हो गये। वे सभी नित्य की भाँति हर्षोल्लास के साथ सन्ध्या हवन में रुचि ले रहे थे। बाल-गुरुदेव 'चन्द्र' की शारीरिक क्रियात्मक चेष्टाओं से लगता था कि सन्ध्या हवन के कार्य में एकाग्रचित्त हैं। किन्तु वास्तव में वे भगवान श्री कृष्ण की ही परम कल्याणकारी सुमधुर पवित्र कल्पनाओं में कहीं खोये हुये थे। उनका मन लम्बी-लम्बी उड़ाने भरता हुआ वृन्दावन की कुंज गलियों, यमुनातट, गोकुल, नन्दगाँव, बरसाना, राधाकुण्ड आदि ब्रजक्षेत्र के पवित्र क्षेत्रों में रमण कर रहा था।

सन्ध्या हवन के बाद आचार्य जी से उपदेश सुनना सभी के लिए अनिवार्य था। सभी ब्रह्मचारी एकाग्रता के साथ श्री आचार्य जी का उपदेश सुन रहे थे। किन्तु पूज्य गुरुदेव जी असाधारण मौन

साधकर अपने नेत्रों की दृष्टि को रिक्त जमीन पर गड़ाये हुये किसी गहरे चिन्तन में थे। तभी श्री आचार्य जी ने बड़ी सरलता से पूछा–

"'चन्द्रमोहन' ब्रह्मचारी जी ! हमने आज के उपदेश में क्या कहा है ? क्या तुमने भलीभाँति सुना है ?" पूज्यपाद गुरूदेव जी तुरन्त खड़े हो गये और करबद्ध होकर कहने लगे– "क्षमा कीजिए, आचार्य जी। मेरा चित्त किसी विशिष्ट चिन्तन में उलझ गया था आपने जो उपदेश किया उसे मैं ठीक से सुन नहीं सका हूँ। अब आगे ध्यान रखूँगा।" आचार्यजी ने फिर प्यार से कह दिया–अच्छा ! तो कोई बात नहीं, ठीक है तुम बैठ जाओ।

उत्कृष्ट चिन्तन और श्रेष्ठ विचार शक्ति वाले आचार्य श्री विश्वबन्धुजी ब्रह्म० 'चन्द्र' के असाधरण स्वभाव परिवर्तन को लेकर काफी चिन्तित थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि 'चन्द्र' इस प्रकार का लड़का नहीं है, अवश्य ही वह किसी मानसिक परिस्थिति का शिकार हो रहा है। तभी भोजन की घण्टी सुनते ही सभी ब्रह्मचारी भोजनालय में पहुँच गये। पूज्य गुरूदेव जी ने आधेमन से ही भोजन किया। तत्पश्चात विद्यालय की नियमावली के अनुसार १० मिनट टहलकर वे चुपचाप अपने कक्ष में आ गये। यही समय होता था जिसमें दिनभर की व्यस्तता के बाद कुछ स्वच्छन्दता के क्षण मिलते थे। वैसे यह समय दिनभर के दौरान पढ़े गये पाठों को दोहराने का था।

–कहिए, ब्रह्मचारी जी ! कैसे हो ?

गुरूदेवजी ने देखा कि स्वयं आचार्य जी उनके कक्ष में आकर पीछे खड़े हो गये हैं।

–जी, बिल्कुल ठीक हूँ। आपका स्नेह–आशीर्वाद जो मेरे साथ है।

इतना कहकर गुरूदेवजी अपनी अलमारी को खोलकर दिखाने लगे। यह सोचकर कि हमेशा की भाँति आचार्य जी हमारे सामान की तलाशी लेने आये होंगे। आचार्य जी तुरन्त बोले–

–नहीं–नहीं, बेटा ! हम तो आज तुमसे तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन पर कुछ चर्चा करने की इच्छा से आये हैं।

–जी आचार्य जी।

पूज्य गुरूदेव जी को आचार्यजी की बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था, विद्यालय के कार्यों में इतनी व्यस्तता के बावजूद भी किसी आवश्यक व्यक्तिगत चर्चा के लिए वे फुर्सत के क्षण निकालने की कला भी जानते थे। अपने विद्यार्थियों के कल्याणार्थ किस प्रकार उन्होंने अपने जीवन के एक–एक क्षण का सदुपयोग किया था। आचार्यजी के ऐसे चारित्रिक गुण गुरूदेवजी के हृदय में घर कर जाते थे।

–मैं देख रहा हूँ कि पिछले एक–दो महीने से तुम अपनी पढ़ाई के प्रति पहले जैसा उत्साह–उल्लास नहीं दिखा रहे हो।

–जी, ऐसे ही मेरा मन कुछ अशान्त सा बना रहता है।

–क्या मैं जान सकता हूँ तुम्हारी इस अचानक प्रकट हुई अशान्ति का कारण क्या हो सकता है ? पूज्य गुरूदेव जी श्री आचार्य जी के प्रश्न को सुनकर भारी मानसिक संकट में पड़ गये। 'आर्य समाज' के तौर–तरीकों और परम्पराओं से वे अपने जन्म से ही भलीभाँति परिचित थे। अपने घर में ही उन्हें पूज्य पिताश्री के द्वारा 'आर्य समाजी' वातावरण मिला हुआ था। वे समझते थे यहाँ

'श्रीकृष्ण' से लोगों को भला क्या लेना-देना ? मेरे श्रीकृष्ण प्रेम की पवित्र भावना को समझने वाला यहाँ कौन हो सकता है ? केवल श्रीकृष्ण जी के लिए मेरे 'विद्यालय-त्याग' की बात को आचार्य जी सहन कर सकेंगे क्या ? मन में तो संकोच की असंख्य धाराऐं बह रही थी किन्तु गुरुदेवजी ने सोचा आज मौके से श्री अधिष्ठाता जी मेरे कक्ष में आ ही गये हैं तो क्यों न आज ही मैं अपने दृढ़ निर्णय को उनके समक्ष कह डालूँ। इसी सुविचारणा के दौरान श्री आचार्य जी के उदारता पूर्ण मधुर शब्द सुनाई पड़े-

-बेटा ! यदि तुम्हारी कोई आर्थिक समस्या हो तो मुझे अवश्य कहो, मैं तुम्हारी हर तरह से मदद करने की चेष्टा करूँगा। पारिवारिक कोई उलझन हो तो उसके लिए भी हम तुम्हें अपना उचित परामर्श देने का प्रयास करेंगे।

-आचार्य जी, आप मुझे अपने माता-पिता सम प्रिय हो। मैं जानता हूँ कि मेरी बात सुनकर आपको महान भावनात्मक कष्ट पहुँचेगा किन्तु मैं विवश होकर आपके चरण-कमलों में कुछ कहने की हिम्मत जुटा पाने का प्रयास कर रहा हूँ।

बहुत संकोच के साथ जमीन में गहरी आँखे गड़ाते हुए पूज्य गुरुदेव जी ने कहा-

-आचार्यजी ! मैं विद्यालय छोड़कर अब अपने घर जाना चाहता हूँ।

-ये क्या कह रहे हो ? तुम जरा ठीक से सोच विचार लो। (आचार्यजी चौंकते हुए बोले।)

-(याचनापूर्ण वाणी में गुरुदेव जी बोले) मुझे मेरी इस धृष्टता के लिए क्षमा करें, आचार्य जी। मेरा निर्णय अटल है। कृपया मत रोकिए, मुझे जाने दीजिए।

-लेकिन क्यों ? देखो बेटा, तुम ब्राह्मण हो। ब्राह्मणों को तो विद्या का धनी होना चाहिए। बहुत आश्चर्य हो रहा है मुझे कि तुम सुसंस्कार निर्माण से बंधी इस विद्यालय की उत्कृष्ट शिक्षा को ठुकराकर जा रहे हो। मुझे लगता है तुमने भावुकता में आकर शीघ्रता से ऐसा अनुचित निर्णय ले लिया है। तुम इस विद्यालय के सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली-मेधावी छात्र हो। मैंने तुम्हारे सुन्दर भविष्य के लिए बहुत कुछ सोच रखा है। यदि तुम्हारे जैसे योग्य विद्यार्थी ही इतनी ऊँची विद्या से वंचित रहें तो हमारे इस पुरुषार्थ से क्या लाभ ? विवेक सम्मत निर्णय लेने की कोशिश करो। इस विषय में शीघ्रता अच्छी नहीं।

श्री आचार्यजी की उक्त बातों को सुनकर पूज्य गुरुदेव जी के मुखारविन्द से स्वाभाविक ही निकल पड़ा-

-आचार्यजी ! आगे चलकर मैं शायद आर्य न रह पाऊँ।

पूज्य गुरुदेवजी को भय था कि मेरी बात को सुनकर आर्य समाज के परम उपासक श्री आचार्य जी कहीं नाराज न हो जायें। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। सामान्य स्वार्थी मनुष्यों की भाँति संकीर्ण अन्तःकरण से वे बहुत ऊँचे उठे हुए थे। पूज्य गुरुदेव जी की भोली बातें सुनकर वे हँस पड़े और हंस कर कहने लगे-

-अच्छा ! तो दे बता तू आर्य नहीं रह पायेगा तो क्या तू मुसलमान हो जायेगा ?

-नहीं, आचार्यजी ! मुसलमान तो मैं कभी भी बिल्कुल नहीं बनूँगा।

-अच्छा ! तो तू आर्य बनेगा नहीं, मुसलमान बनेगा नहीं, तो फिर क्या बनेगा ?

परम पूज्य भोले गुरुदेवजी ने बड़ी सरलता और सहजता से, सहमते हुए उत्तर दिया–

–आचार्य जी ! मुझे 'श्रीकृष्ण' बहुत प्यारे लगते हैं।

–तो श्री कृष्ण हमें क्या बैरी लगते हैं ? हमें भी तो प्यारे लगते हैं। श्रीकृष्ण का प्यारा लगना कोई बुरी बात नहीं है। देख बेटा, तू उनसे खूब प्यार किया कर, लेकिन यहाँ से कहीं मत जा यहीं रह।

श्री आचार्य जी के मुख से भगवान श्री कृष्ण के प्रति इतने सुन्दर वचन सुनने को मिलेंगे पूज्य गुरुदेवजी को ऐसी उम्मीद अपनी कल्पनाओं में दूर-दूर तक नहीं थी। श्री आचार्य जी ने अपने ज्ञानपूर्ण व संक्षिप्त शब्दों से, स्पष्ट कर दिया था कि आर्य समाज के विकास में श्री कृष्ण किसी प्रकार भी बाधक नहीं हैं। उन्होंने कहा-''श्रीकृष्ण तो हमें भी प्यारे लगते हैं।'' आचार्य जी के वैयक्तिक सौन्दर्य प्रभाव के अतिरिक्त उनके उक्त सुमधुर शब्दों का ही चमत्कार अधिक रहा होगा जो गुरुदेवजी उन्हें जीवन भर भुला न सके। उक्त एक ही वाक्य में उन्होंने कृष्ण महिमा को गा दिया था। कितना जाग्रत हृदय था पूज्य आचार्य जी का ! वे महर्षि दयानन्द जी की उत्कृष्ट भावना को समझ कर उनके सिद्धान्तों का सहारा लेकर देश की सेवा कर रहे थे, ईश्वर की सेवा कर रहे थे। वे 'आर्य समाज' के 'समाज' रूपी किसी दायरे में बंधे हुये नहीं थे। वे उससे बहुत ऊपर उठ कर भगवान श्रीकृष्ण के उत्कृष्ट गीता ज्ञान 'विश्व मानव प्रेम और कल्याण की भावना' का ही प्रचार-प्रसार कर रहे थे। वे 'आर्य समाजी' सुन्दर पात्र से त्रिजगत पावन भगवान श्रीकृष्ण की योग विद्या का ही अमृत पी रहे थे।

श्री आचार्य जी के मुख से 'श्रीकृष्ण' के प्रति सुन्दर वचनों को सुनकर व उनकी कृष्णमय सुन्दर भावना को जानकर पूज्य गुरुदेव जी का हृदय मोम की तरह पिघल रहा था। श्री आचार्य जी ने उनके झुके हुए चेहरे को ऊपर उठाते हुए कहा–

–तो क्या हम तुम्हारे मौन का यही अर्थ लगायें कि तुम हमारी बात से सहमत हो ?

इससे आगे श्री आचार्य जी कुछ नहीं कह सके, उन्होंने देखा कि भोले सौम्य सूरत वाले ब्रह्म. 'चन्द्र' के दोनों गाल आँसुओं से तर हो रहे थे। यह निर्णय कर पाना कठिन था कि यह सहज अश्रुनिपात योगेश्वर श्री कृष्ण के प्रति उनके विलक्षण प्रेम के लिए था या आचार्य जी की महानता के प्रति उनके चरणों में नतमस्तक हो जाने के लिए। पूज्य गुरुदेव जी का अन्तःकरण अन्दर ही अन्दर सुबक रहा था। श्री आचार्य जी से इतना सुनकर भी वे अपने दृढ़ संकल्प से विचलित नहीं हो पा रहे थे। उन्हें तो 'श्रीकृष्ण' को ढूँढ निकालने की, उन्हें प्राप्त करने की ही धुन सवार थी। एकाएक, आँखों में अश्रु लिए वे सुबकते हुए श्री आचार्य जी से प्रार्थना करने लगे–

–मैं आपके चरणों में पड़कर क्षमा चाहता हूँ यदि आप वास्तव में ही मेरा हित चाहते हैं तो मुझे मत रोकियेगा।

गम्भीर प्रकृति के दूर दृष्टि वाले आचार्य जी ने गुरुदेवजी के आसुओं से उनकी मनोव्यथा की जड़ों को नाप लिया था। बच्चों के क्या, बड़ों के भी असाधारण हठ को अन्ततः स्वीकार कर ही लेना चाहिए। नहीं तो उनके मानसिक रूप से विक्षिप्त होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि तमाम मानसिक रोगियों के रोग का मूलभूत कारण उनकी कोई विशिष्ट और प्रबल मनोइच्छा ही होती है जो पूर्ण न होने पर अथवा किसी के द्वारा उसमें व्यवधान डालने पर या छीन लिए जाने पर मनुष्य के बौद्धिक सन्तुलन को बिगाड़ देती है। आचार्य जी ने बड़े प्यार से गुरुदेवजी के सिर पर हाथ फेरा और पीठ थपथपाते हुये कहा-

"अच्छा, अब तुम अपने आँसुओं को पोंछ लो। तुम्हारे हठ पर हम अपना हठ आरोपित करना नहीं चाहते। किन्तु एक बात और सुनो, यह विद्यालय तुम्हारा घर ही है। विद्यालय छोड़ने का यह अर्थ नहीं कि हमने तुम्हें अपने हृदय से भी निकाल दिया है। तुम्हारी जब इच्छा करे तब अपने इस विद्यालय में चले आना। अभी तुम अपने घर जाना चाहते हो तो चले जाओ।" कहते-कहते आचार्य जी की आँखें नम हो चली थीं। वे गुरुदेवजी को स्नेह-दुलार देते हुये उनके कक्ष से शीघ्र ही बाहर निकल आये। फिर वे किसी से मिलने हेतु नहीं गये, दिन भर की थकान से विश्राम पाने अपने व्यक्तिगत कक्ष में चले गये।

पूज्यपाद गुरुदेव जी ने अपने शिक्षा गुरु श्री विश्वबन्धु जी के गुणानुवाद में बड़े सुन्दर उद्गार प्रस्तुत किये हैं, पढ़ियेगा।

गुरुवाणी-

श्री आचार्य जी बहुत ही ऊँचे विचार के व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा बहुत महान थी जो उनके चरण में रहने वाले ब्रह्मचारियों के हृदय में घर कर गई। मैंने पहले-पहल ऐसा नियन्त्रण ब्रह्म विद्यालय नान्दल में पं० शंकर दत्त जी के द्वारा प्राप्त किया था और उसके बाद अनेक संस्थाओं में घूम-घूम कर देख लेने के बाद श्री मद्दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय लाहौर में जीवनी शक्ति प्राप्त की जिसका श्रेय आचार्य श्री विश्वबन्धु जी के चरण कमलों को है।

पूज्य गुरुदेवजी श्री आचार्य के प्रति अपने हृदय में गहरा आदर रखते थे। वे उनकी इच्छा पूरी न कर सके इस बात का उन्हें गहरा दुःख था। किन्तु अब वे पूर्णतः सन्तुष्ट थे। घर जाने की अनुमति उन्हें श्री आचार्य जी को प्राप्त हो गई थी। दो-एक दिन पश्चात वे इस महान विद्यालय को प्रणाम कर सामान सहित अपने घर लौट आये।

गुरुवाणी-

अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र सारे संसार के आधार तो हैं ही किन्तु मेरे हृदय में रहने वाले वे सर्वशक्तिमान तो जन्म से ही मुझे प्यारे थे। संस्कारों का वेग व संस्कारों की प्रबलता थी कि मैं अपने इस अमरता के दाता विद्यालय को छोड़ आया। पश्चाताप तो मेरे मन में बहुत हुआ किन्तु श्री कृष्ण प्रेम की विवशता से ऐसा ही हो गया।

क्रमशः

प्रभु महिमा

कु० रजनी शर्मा, आगरा

मैं तो प्रभु जी के दर जाऊँ।
इत उत घूम-घूम के आई, प्रभु सम कोई न पाऊँ।
देख देख प्रभु की लीलाऐं, प्रभु जी पर बलि जाऊँ।
प्रभु द्वारे सम द्वार न कोई, मन प्रभु चरण लगाऊँ।
तन मन धन सब अर्पण कर, मैं प्रभु का गुण गाऊँ।
भक्ति दीप जलाऊँ प्रभु सम, श्रद्धा सुमन चढ़ाऊँ।
प्रभु जी ने मोपै किरपा कीन्ही, हरस हरस मैं गाऊँ।

मेरे कृपालु प्रभु

सिर पै जटाऐं हँसै।
तन तेज अखण्डा हँसै।
कैसी कृपा भई प्रभु रामलाल की।।
लीला है अपार प्रभु की।
कृपा कौ ना ओर छोर।
तीनों ही लोकन में कीर्ति ही प्रभु की।।
पीरन के पीर प्रभु।
अधीरन के धीर प्रभु।
प्रभु प्राप्ति की कैसी राह दई योग की।।
योग के दिखाये करतब।
भक्तन को दिया तब।
अनेकन पै किरपा भई कैसी शक्तिपात की।।
ज्ञान कौ दियौ है दीप।
मन्त्र की दई है ज्योति।
कैसी अनोखी विद्या प्रभु ने दई है मोक्ष की।

शिष्य संताप निवारक श्रीगुरुदेव

अवनीश कुमार भटनागर, सहारनपुर

श्री गुरु गीता में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि जो अपने शरणागतों की हर प्रकार के दुःखों से रक्षा करने की शक्ति रखते हैं, वो ही वास्तव में सच्चे सद्गुरु हैं। अर्थात् उनको ही गुरुदेव कहा गया है। हमारे श्री सिद्धगुफा परिवार को महान सिद्धेश्वर योगीराज श्री प्रभुजी एवं श्री सद्गुरुदेव जी का सिद्ध आशीर्वाद प्राप्त है वह कभी संसार में प्रकट होकर कभी अपनी दिव्य प्रेरणाओं द्वारा और कभी अपने आज्ञा प्रदत्त योग्यतम शिष्यों द्वारा जनकल्याण कर रहे हैं। और करा रहे हैं। करण-कारण वह स्वयं होते हैं। सारा कार्य वह स्वयं करते हैं और उसका श्रेय अपने बच्चों को दे देते हैं। वह पूर्ण सर्व समर्थ महाप्रभु चाहें तो तिनके को भी शक्ति देकर संसार का दुर्लभ से दुर्लभ कार्य करा लेते हैं। और यदि वह न चाहें तो संसार के बड़े से बड़े धर्म धुरंधरों से भी अपना कार्य नहीं कराते। श्री महाप्रभु रामलाल जी एवं प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के विश्वप्रसिद्ध शक्ति दाता दरबार में पहुँचने वाले लोग अपने मन में लौकिक एवं पारलौकिक जो भी इच्छायें लेकर जाते हैं उनकी पूर्ति आनन्दकन्द श्री प्रभुजी पूरी करते हैं। इसी से सम्बन्धित इसी वर्ष की सत्य घटना प्रस्तुत है।

जनवरी २००० में हमारे सामने एक विकट समस्या आ खड़ी हुई। हमारे एक परिचित जो शुगर पेशेन्ट २५ वर्ष पुराने हैं। इनकी शुगर प्रायः ४०० के लगभग रहती है। इनके दोनों पैर घुटनों तक बिलकुल सुन्न रहते हैं। किसी कारण से पैर के अंगूठे में चोट लग गई वह ठीक होना तो दूर बहुत ही भयंकर स्थिति में पहुँच गए। पैर का साइज सूज कर चार गुना हो गया। त्वचा बिल्कुल काली और पत्थर की तरह हो गई। कहीं से भी फूट कर खून व मवाद बह उठता था। अंगूठा और उंगली की हड्डियाँ गल चुकी थीं। डाक्टर लोगों की निगाह में गैंगरीन का केस था। सभी सीनियर डाक्टरों एवं सर्जनों की राय पैर को शीघ्र अति शीघ्र कटवाने की ही थी। लगातार तीव्र बुखार बना रहता था नींद बिल्कुल गायब हो चुकी थी। डाक्टर लोग भारी भरकम ऐन्टीबायोटिक दे रहे थे। ऐसे में यह समस्या हमारे समाने भी आयी।

हमारे परिचित ये महोदय हमसे बोले कि मुझे किसी भी तरह पन्द्रह दिन की जिन्दगी मिल जाये तो मैं अपने जरूरी-जरूरी कार्य निबटा लूँ (यह बात उन्होंने रोकर कही थी)। हमारे मन में तुरन्त एक बात आयी कि क्यों न इनको लेकर श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम जाया जाये। यदि उस दिव्य दरबार की कृपा इन पर हो गई तो चाहे डाक्टरों ने कुछ भी कह रखा हो और कितनी भी स्थिति खराब हो सब ही प्रभु जी की कृपा से ठीक हो जायेगा। मरीज की हालत काफी नाजुक थी। यह भी

तय नहीं हो पा रहा था कि बस से जायें या ट्रेन से। दोनों ही स्थितियाँ कष्ट कारक थी। बड़ी कठिनाई से श्री सिद्ध गुफा के पवित्र चमत्कारिक दरबार लेकर पहुँच ही गये। वहाँ पर मेला लगा था। श्री सिद्धगुफा दरबार के संस्थापक योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का जन्मोत्सव श्री रामनवमी पर्व मनाया जा रहा था। हमने मरीज को श्री सिद्धगुफा दरबार का दर्शन एवं पूजन कराया और श्री महाप्रभुजी से अश्रुपूरित नेत्रों से हार्दिक प्रार्थना की कि हे करूणानिधान महाप्रभु आप इनका यह कष्ट नष्ट करने की कृपा करें। और मन में सर्वशक्तिमान सद्‌गुरू देव जी के अभय श्री चरणों का चिन्तन करके खाने को श्री सिद्धगुफा की रज और लगाने की पवित्र अमृतकुंड की रज् (मिट्टी) का प्रसाद दिया। महाप्रभु श्री सद्‌गुरूदेव जी ने विनती स्वीकार की और सभी के लिये महान आश्चर्य का कारण बन गया जब इतनी विकट स्थिति वाला पैर श्री सिद्ध गुफा से लौटने के बाद धीरे-धीरे ठीक हो गया।

यह संसार दुःखों का सागर है। संसार के अन्दर भांति-भांति के लोग रहते हैं। सबकी मतियाँ अलग-अलग प्रकार से कार्य करती हैं। श्री गुरूदेवजी ने श्री मुख से कहा भी है- **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।** संसारी जीव जीवन पथ में सद्‌पुरुषों के चरणारविन्द मिल जाने के बाद भी छल छिद्र, माया, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, को त्याग नहीं पाते इसलिये पात्र होकर भी सतपात्र नहीं बन पाते। इसलिये प्रायः दूसरे व्यकितयों के लिये अकारण कष्ट का कारण बनते रहते हैं। श्री गुरूदेवजी के अनुसार प्रत्येक साधक को अपने अन्दर दुर्गुणों का विकास नहीं होने देना चाहिये; बल्कि सदैव सद्‌गुणों का ही विकास करना चाहिये। जिससे परमात्मा की शक्ति के तेज में झिलमिला कर अपने को व अपने संसार में आने के उद्‌देश्य को पहिचान सके। कहीं ऐसा न हो हम मात्र दूसरों को कष्ट देने का कारण ही न बन कर रह जायें। कहा भी है- ''मक्खी मच्छर कीट पतंग तीनों की मति एक, अपना जीवन खोयकर औरन को दुख देत'' औरों को दुख देने के चक्कर में पता नहीं कब अपना जीवन नरक में बदल जाता है। और जीवन समाप्त भी हो जाता है, तब जीव ईश्वर से समय माँगता है। परन्तु परमपिता भी क्या ''अब वक्त माँगा जब वक्त तंग आया'' सिवाय पछताने के फिर कुछ हाथ नहीं आता। ''अब पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत''। तब भगवान की वाणी सुनाई देती है ''मैंने मनुष जन्म तुझे हीरा दिया था, तू व्यर्थ गवां आया तो मैं क्या करूँ''। अनमोल मानव देह को सच्चे कार्यों के लिये प्रस्तुत कर देना चाहिये। श्री गुरूदेव जी ने श्रीमुख से कहा भी है- ''जब तक तुमसे रोग शोक और मौत दूर है तुम परम सत्ता का चिन्तन कर लो नहीं तो शरीर क्षीण और आयु समाप्त होने पर कुछ नहीं बन सकेगा। ऐसे दुःख के समय में न राम याद आयेगा और न कृष्ण''। क्योंकि कुछ संसारी जीव यह अक्स कहते मिल जायेंगे अरे बुढ़ापे में कर लेंगे।

***

सुदामा कथा : एक आध्यात्मिक व्याख्या

रुद्रदत्त चतुर्वेदी, रामपुर

भगवान श्री कृष्ण सोलह कला पूर्ण अवतार थे। यही कारण है कि हमें उनके अनेक रूप दिखाई देते हैं। वे अच्छे, सखा, रास रचैया, बालपन से ही राक्षसों का मर्दन करने वाले हैं तो दूसरी ओर वे अच्छे मल्ल, शस्त्र शास्त्र ज्ञाता और महान योगिराज भी हैं। उनका गीता ज्ञान तो विश्व स्वीकार्य महान ग्रन्थ है।

चूँकि व्याख्यायें उबाऊ होती हैं अतः सनातन हिन्दू धर्म में उन्हें प्रतीक रूपों और कथाओं में व्यक्त करने की परम्परा प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे सूचनाओं और ज्ञान के संवाहन की कमी के कारण लोगों को कथायें तो याद रह गई परन्तु उनके निहितार्थ भूल गये।

ऐसी ही एक कथा सुदामा की भी है। सुदामा एक गरीब ब्राह्मण थे जो भगवान कृष्ण चन्द्र के साथ गुरू सांदीपन के आश्रम में पढ़े थे। गुरूकुल से लौटने के बाद सुदामा गृहस्थ बन गये। उनकी पत्नी उनकी दरिद्रता से अत्यन्त दुखी थीं और उन्हें बार-बार सम्पन्न सखा कृष्ण से मिलकर दारिद्रय-दुःख दूर करने का आग्रह करती थीं जैसा कविवर नरोत्तमदास ने लिखा है- 'या घर ते कबहूँ न गयौ पिय टूटो तवा और फूटी कठौती'।

बहुत आग्रह के उपरान्त सुदामा भगवान कृष्ण के पास जाने को तैयार हुए और पास पड़ौस से मांगकर लाये गये चावलों की पोटली बगल में दबाकर द्वारिका चल दिये। पूछते-पूछते भगवान के द्वारे पहुँचे। भगवान ने अपने पुराने मित्र को पहिचान लिया। एक मुट्ठी चावल भी खा लिए किन्तु आगे रुक्मिणी जी ने उन्हें रोक दिया। कुछ दिन रहकर सुदामा दुखी मन से वापस लौटे क्योंकि भगवान ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप में कुछ नहीं दिया था। लौटने पर टूटी झोपड़ी की अपेक्षा महल मिला। वे भ्रमित हो गये। पत्नी ने उन्हें पहिचाना और फिर सुखपूर्वक जीवन बिताकर उन्हीं भगवान के लोक को चले गये।

आध्यात्मिक व्याख्या :

प्रश्न हैं-सुदामा कौन, तन्दुल क्या और उनकी पत्नी कौन ? यह सब रूपक है, भक्त और भगवान के मधुर मिलन की कहानी है। संस्कृत में दामन शब्द का अर्थ है रस्सी। इस प्रकार सुदामा का अर्थ हुआ रस्सियों से अच्छी तरह बाँधा गया व्यक्ति। अर्थात् माया में बंधा यह प्राणी। सुदामा कृष्ण के सहपाठी थे, सखा थे। यह जीव भी परब्रह्म का सखा है, मित्र है। गुरूकुल छूटने पर दोनों अलग हो जाते हैं- संसार में आते ही जीव अपने मित्र को भूल जाता है। पत्नी या सहधर्मिणी सात्विक बुद्धि उसे बार-बार मित्र से मिलने को कहती है परन्तु वह उसकी बात नहीं मानता और इस

प्रकार (बातन बीत गये पन है, अब तो पहुँची बिरधा पन अथर्क) जीवन का अधिकांश भाग बीत जाता है। और शरीर शिथिल होने लगता है तब प्रभु याद आते हैं।

सुदामा जी चावल की पोटली बगल में दबा कर गये थे। चावल सफेद होते हैं। पुण्य भी सफेद होते हैं। जब तक सुदामा नहीं चले थे द्वारिका कोसों दूर थी। अर्थात् पुरुष के सक्रिय होते ही, याद करते ही द्वारिका यानी भगवान समीप आ जाते हैं। वे दूर हैं ही कहाँ वे तो अपने ही भीतर हैं। सुकर्मों की पुण्य प्रेरणा से याद करने भर की देर है। द्वारपाल से सूचना भिजवाते ही श्रीकृष्ण भगवान दौड़े-दौड़े आये। 'भगवान भक्त के वश में होते आये' आप उन्हें याद तो करें। बुलायें तो। चावल खाना भक्त के पुण्यों को स्वीकार कर अपने में आत्मसात करना है। जब जीव भगवद्दर्शन करता है तो संकोचशील सुदामा की भांति क्षण भर को विश्वास नहीं होता। उसकी जन्म जन्मान्तरों की मलिनता धुलते ही उसकी काया (झोंपड़ी) कंचन काया बन जाती है और अपनी पत्नी (सुबुद्धि) के साथ इस भवन में निवास करता हुआ परम प्रभु के धाम को प्राप्त करता है।

इसका अन्य अर्थ यह भी है कि साधक सुदामा (सु, अच्छा) (दामा, धनवान) बने क्यों कि जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन की उक्ति के अनुसार ईमानदारी के तण्डुल भी उन परम कृपामय को ग्राह्य हैं। यही इस कथा का सार है।

* * *

शोक समाचार

सिद्धयोग प्रचार सभा, सहारनपुर के श्री जुगमन्दरदासजी का देहावसान गत् १८ नवम्बर, २००[illegible] [illegible]न शनिवार को प्रातः हो गया। उन्होंने अपने पीछे दो पुत्रों और एक पौत्र सहित भरा-पूरा परिवार छोड़ा है। दासजी सभा के योग प्रचार मंत्री भी रहे।

सिद्धयोग परिवार दिवंगत आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करते हुए महाप्रभुजी से उन्हें अपनी अभय गोद प्रदान करने की याचना करता है। साथ ही परमात्मा से शोक संतप्त परिवार को धैर्य धारण करने की शक्ति देने की कामना करता है।

—सम्पादक

ध्यान क्या है ?

ब्र० ओमप्रकाश

आज संसार में ध्यान की मनघड़न्त अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं जबकि ध्यान मूलत: योग दर्शन का विषय है अन्य किसी का नहीं। ध्यान योग की महान महिमा तथा इससे मिलने वाले महान लाभों को देखकर सभी धर्म व स्वास्थ्य सुधारक संस्थाओं ने विभिन्न नाम और रूप में इसको अपनाया है। योग दर्शन के अनुसार ध्यान की मुख्य रूप से एक ही पद्धति है।

योग दर्शन में ध्यान अष्टांग योग का सातवाँ सोपान है ध्यान से पूर्व यम-नियम, आसन, प्राणायाम की साधना के बाद प्रत्याहार की साधना है **"स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:"** अर्थात् अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो सकता है वह प्रत्याहार है। इस प्रत्याहार के सिद्ध होने पर इन्द्रियाँ साधक के वश में हो जाती हैं। इस प्रत्याहार के बाद धारणा का सोपान है। इसके विषय में योग-दर्शन में बताया है **"देशबंधश्चित्तस्यधारणा:"** अर्थात् चित्त की वृत्तियों को किसी एक लक्ष्य विशेष में बाँधना, रोकना अथवा लगाना धारणा कहलाती है। इस धारणा के बाद अब आगे ध्यान का सोपान आता है इसके विषय में बताया गया है **"तत्र प्रत्ययै कतानताध्यानम्"** जहाँ चित्त को लगाया जाय रोका जाय केवल मात्र उसी में वृत्ति का एकसा बना रहना ध्यान कहलाता है। अर्थात् ध्याता (साधक) जिस ध्येय वस्तु का ध्यान करता है तैल धारावत चित्त उसी में एकाग्र होकर ठहरा रहे केवल ध्येय मात्र की एक ही वृत्ति का प्रवाह चलना उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ध्यान कहलाता है। ध्यान जिसका किया जाय ध्यान में सिर्फ उसी का दीखना ही ध्यान है। जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का ध्याता का निज स्वरूप शून्य सा हो जाय तब वही ध्यान समाधि कहलाता है।

सांख्य दर्शन में ध्यान की परिभाषा इस प्रकार की है **"ध्यानं निर्विषयंमन:"** अर्थात् मन को विषय रहित करना ध्यान है। मन को उस अवस्था में ले जाना जबकि मन में कोई विचार न उठे अर्थात् मन को विचार शून्य कर देना यह सांख्य दर्शन का ध्यान है। इस अवस्था में पहुँचा हुआ साधक आत्मानन्द की अनुभूति करता है। उसके मन और मस्तिष्क को पूर्ण विश्राम व शान्ति मिलती है।

नित्य अखण्ड ध्यान समाधी में रहने वाले योगेश्वर शिव पार्वती जी को ध्यान की महिमा बताते हुए कहते हैं **"नास्ति ध्यान समं तीर्थम, नास्ति ध्यानं समं यज्ञ, नास्ति ध्यान समं दानं नास्ति ध्यानं समं पूजा तस्मात् ध्यान समाचरेत।।"**

अर्थात् ध्यान के समान न तो कोई तीर्थ है न यज्ञ है और न कोई दान है। इतना ही नहीं ध्यान के समान मुझ शिव की अन्य कोई पूजा भी नहीं है अत: सबको ध्यान ही करना चाहिए। भगवान शिव के अतिरिक्त हमारे सभी अवतारी महापुरुष योगेश्वर श्री कृष्ण-राम आदि सभी ध्यानी थे। गीता का छटा अध्याय केवल ध्यान योग का ही है। रामायण में भी ध्यान के विषय में कहा गया है।

"मनुथिर करि तब शंभु सुजाना। लगे करनरघुनायक ध्याना।।
"मुनिहि राम बहुभाँति जगाता। जाग न ध्यान जनित सुख पावा।।

सन्त कबीर कहते हैं कि जिसका ध्यान ब्रह्म, विष्णु, शिव तथा अठासी हजार मुनि करते हैं वही परम पुरुष परमात्मा आत्म रूप से तुम्हारे हृदय में निवास करता है अतः तुम अपनी आत्मा का ही ध्यान करो। यथा

''जाको ध्यान धरै विधि हरिहर, मुनिज न सहस अठासी।
सो तेरे घट माहिविराजे परम पुरुष अविनासी।।''

अतः ध्यानी भगवान शंकर श्री कृष्ण राम के उपासकों तुम भी इन्हें पाने के लिए ध्यान करो। रावण की हत्या से ब्रह्म हत्या के पाप से चिन्तत श्री राम को उनके गुरू वशिष्ठ जी ने उनको ध्यान कराया तब कहीं जाकर उनके चित्त को शान्ति मिली तथा ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिला।

हम ध्यान क्यों करें, हमें ध्यान करने की क्या आवश्यकता है ?

हम सबको आज ध्यान करने की आवश्यकता केवल अध्यात्म जगत में ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक हमें भौतिक जगत अर्थात् व्यवहारिक जगत में इसकी आवश्यकता है। क्योंकि ध्यान के बिना न तो मनुष्य अध्यात्म जगत में सफलता प्राप्त कर सकता है और न ही भौतिक वादी संसारी व्यक्ति सांसारिक अपने कार्यों में सफल हो सकता है। ध्यान से मिलने वाली मन की एकाग्रता की सबको जरूरत है। इसके बिना किसी का काम भी नहीं चल सकता।

इस ध्यान शब्द का उपयोग हमसब अपने दैनिक जीवन में प्रायः नित्य ही किया करते हैं उदाहरण के लिए, ''अरे भाई मुझे तो इसका ध्यान ही नहीं रहा कि वहाँ जाना है'' ''क्या करूँ ऐसा करना तो मेरे ध्यान से ही उतर गया'' ''वहाँ जाते समय इस बात का ध्यान रखना आदि। कोई भी वाहन चलाते समय अथवा सड़कपर पैदल जाते समय जरा सा भी तुम्हारा ध्यान हटा कि दुर्घटना घटी। इसलिए कहा गया है कि हर कार्य को ध्यान देकर करो हरबात को ध्यान से सुनो तथा ध्यान से देखो आदि।

ध्यान विश्व को योगियों की एक मनमोल अद्वितीय देन है ध्यान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। आज सम्पूर्ण विश्व योग ध्यान के महत्वपूर्ण लाभों को देखकर योग के आसन, प्राणायाम, तथा ध्यान की साधना की ओर तीव्रता से अग्रसर हो रहा है।

आज के मनुष्य का समस्त जीवन बहिर्मुखी होता चला जा रहा है वह बाहर के जगत में ही खोया हुआ है भटका हुआ है उसे अपने अर्न्तजगत की कोई जानकारी नहीं है। मनुष्य सभ्यता की भव्यता के चक्र में फँसकर अपनी दिव्यता को खो बैठा है। केवल निद्रा अवस्था में ही वह विश्राम की अवस्था में अपने शरीर में आता है लेकिन निद्रा अवस्था में भी उसे स्वप्न घेरे रहते हैं वहाँ भी उसे पूर्ण विश्राम व शान्ति नहीं मिलती। पूर्ण विश्राम और शान्ति पाने का अमोघ उपाय ध्यान ही है।

आजकल ध्यान से अपरचित व्यक्ति ही कहते फिरते हैं कि ध्यान करने वाला व्यक्ति सांसारिक कार्यों के उपयुक्त नहीं रह जाता। किन्तु ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। बल्कि इसके विपरीत ध्यानी की कार्य कुशलता व कार्य सफलता और भी बढ़ जाती है। आज के इस आपा धापी के युग में हम सभी परेशान हैं अशान्त हैं, चिन्तित हैं, मानसिक व शारीरिक अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हैं। इस सभी प्रकार की बीमारियाँ से बचाव के लिए ध्यान हम सबके लिए बहुत ही आवश्यक है। अब मैडीसन नहीं; मैडीटेशन करना होगा- रोग निवृती के लिए। आज मनुष्य तनाव ग्रस्त व स्नायु विकारों का शिकार बना हुआ है जिससे शारीरिक बीमारियाँ होती हैं। इन्हें ध्यान की साधना से रोका

जा सकता है। ध्यान से मानसिक विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) पर नियन्त्रण पाया जाता है। क्योंकि ध्यान का प्रभाव मनुष्य के अन्दर स्थित ग्रन्थियों पर पड़ता है जिससे ग्रन्थियों के स्राव में अन्तर आ जाता है। यदि आप भूतकाल की त्रासदी से अपने को मुक्त करना चाहते हैं व वर्तमान की असंतुष्टी से मुक्त होना चाहते हैं तथा भविष्य की चिन्ता से उबरना चाहते हैं तो इनसे बचाव का ध्यान ही एकमात्र उपाय है। ध्यान ही मनुष्य के जीवन को धन्यता प्रदान कर सकता है।

ध्यान के क्षेत्र में मूल प्रश्न यह उठता है कि हम किसका ध्यान करें; तो इसका सीधा साधा सा उत्तर है कि जिससे हम तद्रूप होकर उस जैसा होना चाहते हैं उसका ही ध्यान करें। वैसे तो हमेशा ध्यान-समाधी में रहने वाले भगवान शंकर का ही हम सबको ध्यान करना चाहिए। ध्यानी के लिए यही सर्वश्रेष्ठ ध्येय है। ध्यान आत्मा तथा परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने की अद्भुत कला है। ध्यान करके ही बुद्ध, महावीर, योगी अरविन्द, मानव से अतिमानव हो गये। देवता सिद्ध अवतार ही नहीं जीव बना हुआ ब्रह्म का अंश ब्रह्म ही हो जाता है। ध्यान करने वाला मनुष्य दुनियाँ की श्रेष्ठतम सम्पदा का स्वामी हो जाता है। नर से नारायण हो जाता है।

दुनियाँ के समस्त धर्मों की सभी साधनाऐं क्रियायें मन को एकाग्र व शान्त करने के लिए ही विकसित की गई हैं। इससे भिन्न किसी भी धर्म का कोई उद्देश्य नहीं है। और मन की एकाग्रता के लिए ध्यान अति आवश्यक है। इस प्रकार ध्यान एक सर्व धर्म मान्य पद्धति है। ध्यान शुद्ध रूप में एक मानसिक क्रिया है मानसिक एकाग्रता है। व्यवहार में हमारा मन सर्वाधिक रहता है।

हम ध्यान कैसे करें ? किसी एकान्त शान्त स्थान में, बैठने के किसी एक आसन से मेरुदण्ड को सीधा करके दोनों आखें बन्द करें तथा बाहर से मन की वृत्तियों को समेट कर अर्न्तमुखी करें। शान्त भाव से बैठकर मन को हठात् सब ओर से रोककर ध्येय वस्तु में लगावें। मन की सतोगुणी अवस्था में गुरु मंत्र का मानसिक जप व ध्यान करें मन की रजोगुणी अवस्था में उपांशुजप (जिसमें सिर्फ होठ हिलें शब्द न हो) मन की तमोगुणी अवस्था में जोर-जोर से कीर्तन करना चाहिए। मन की चालाकी से सावधान रहो। रजोगुण तमोगुण के वातावरण में मन की चालाकी चलती है जो देखी नहीं जा सकती। मन की चालबाजियाँ सत्वगुण के प्रकाश में ही देखने में आती हैं। मन की चालों को सिर्फ ध्यान में ही देखा जा सकता है कि यह मन कितना कुटिल और धोखे बाज है। चंचल, प्रमादी मन का सुधार गुरु शरणागति से ही सम्भव है। मन से विषयों को निकाले बिना ध्यान में सफलता नहीं मिलती है। धीरे-धीरे इस धोखे बाज मन का साथ छोड़ो। आज हम अपनी आत्मा को भूलकर अपने शरीर का ही ध्यान चिन्तन करते-करते हम शरीर ही हो गये हैं। अब ध्यान में बैठकर शरीर को भूलो अपनी आत्मा का ध्यान-चिन्तन करो ऐसा करने से "ध्याने ध्याने तद्रूपता" के अनुसार तुम आत्मा ही हो जाओगे। ध्यान से देहाभिमान गलित होकर तुम आत्माभिमानी हो जाओगे। इस प्रकार अपने शरीर और मन को नित्य ध्यान में बैठने के अभ्यास में डालो। ध्यान करने वाला ध्याता तो तुम्हारा मन ही है, मन से ध्येय का ध्यान करते-करते तुम्हारा मन स्वयं ही ध्येय रूप हो जाय यही ध्यान की पूर्णता है। ध्याता जिस इष्ट देव का ध्यान करता है, उसके गुण ध्याता में आ जाना ही ठीक-ठीक ध्यान है। **"करत-करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान"**

नित्य निरन्तर ध्यान का अभ्यास करने से ध्यान में आने वाली सभी कठिनाइयाँ तिरोहित हो जाती हैं। आज कल ध्यान कराने वाले लोग मूलाधार; प्रथम चक्र से साधना न कराके सीधे-सीधे

आज्ञाचक्र में ज्योति का ध्यान कराते हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे हम बच्चों को पहले दूसरे कक्षा की शिक्षा न दिलाकर सीधे बी.ए., एम.ए. में दाखिला करा दें।

साधक प्रथम किसी एक आसन पर बैठने का अभ्यास करे। साधक का आहार विहार सात्विक होना चाहिए क्योंकि सत्वगुण से ही मन एकाग्र होता है रजोगुण से मन चंचल रहता है। साधक अपने अभ्यास को लम्बे समय तक नित्य निरन्तर कर सत्कार पूर्वक श्रद्धा से करने से साधक की भूमिका दृढ़ होती है। ध्यान साधना के लिए दिए जाने वाले मंत्र का १/२ घण्टा साधक जप करे जप से थकने पर इष्ट देव का ध्यान करे और जब ध्यान से मन हटे तो फिर जप करे। इस प्रकार जप और ध्यान की समाप्ति जहाँ एकत्र हो जाती है वहीं परमात्मा का दर्शन हो जाता है। ध्यान साधना में शीघ्र सफलता के लिए एक तत्व का अभ्यास करें। **ध्यानी साधक का ध्यान में बैठने का एक समय एक मंत्र एक इष्ट एक आसन एक वस्त्र एक स्थान होना चाहिए।** ध्यान में बैठने का सबसे उत्तम समय प्रात: ४ बजे का है। क्योंकि इस समय प्रकृति शान्त व सत्तोगुणी होती है।

ध्यान से मिलने वाले लाभ :-शास्त्रों के अनुसार ध्यान से सबसे महान मिलने वाला लाभ इस प्रकार है **''ध्यानेनसदृशम् नास्ति शोधनं पाप कर्मणम्''** अर्थात् मनुष्य के हृदय के शोधन के लिए तथा पाप कर्मों की शुद्धि के लिए ध्यान से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है; पापों को नष्ट करने का एक मात्र उपाय ध्यान है। इसी प्रकार और भी कहा है।

''यदि शैल समं पापं विस्तीर्ण बहुयोजनाम्।
भिद्यते ध्यान योगेन नान्यो भेद कदाचन:।।''

अर्थात् पाप का फैला पहाड़ भी हो तो वह ध्यान के द्वारा नष्ट हो जाता है। पाप को नष्ट करने का ध्यान के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि ध्यान करने से उत्तरोत्तर ज्ञान और तेज का विकास होता है। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान सूर्य के उदय होने पर सत्व के तेजोमय प्रकाश से पाप भस्म हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिस देश में एक ध्यान योगी निवास करता है वह देश का देश पवित्र हो जाता है फिर उसके भाई-बन्धुओं का तो कहना ही क्या है।

''यस्मिन्देशेबसेद्योगी ध्यान योग विचक्षणा:।
सोऽपि देशोभवत्पूत: कि पुनसतस्य बांधवा:।।''

ध्यान योगी के नासिका रन्ध्रों से तेज के परमाणु निकलते हैं जिस ध्यानी की आत्म शक्ति जितनी बढ़ी हुई होती है उसके वे परमाणु उतने ही तेजस्वी और प्रभावशाली होते हैं। ध्यान करने से ध्यानी के सब मनोरथों की सिद्धि होती है। ध्यान से शारीरिक व मानसिक विश्रान्ति मिलती है। ध्यान से उम्र बढ़ती है; ध्यान से ध्याती का चेहरा तेजोमय व सौन्दर्य युक्त हो जाता है। ध्यान से आत्म ज्ञान, आत्मशान्ति तथा आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। **''ध्याने ध्याने तद्रूपता''** के सिद्धान्तानुसार ध्यान करने वाला साधक जिस भी देवी देवता का ध्यान करता है उसके चित्त अथवा मन का तादात्म्य उसी में होकर वह उसी के रूप वाला हो जाता है। सिर्फ इतना ही नहीं उस देवता के गुण शक्ति सामर्थ्य भी ध्यानी में आने लगती है। ध्यान से दूर दर्शन, दूर श्रवण, दिव्य गन्ध, दिव्य स्पर्श दिव्य रस के अतिरिक्त दिव्य लोकों में गमन की सिद्धियाँ आ जाती हैं। ध्यान से आसुरी गुणों का दमन होकर दैवीय गुणों का विकास होता है। जितना विश्राम मनुष्य को निद्रा में ताजगी व नई स्फूर्ति व ऊर्जा मिलती है उससे अनन्त गुना बढ़कर शारीरिक और मानसिक विश्राम और ताजगी, स्फूर्ति

और शक्ति ध्यान से मिलती है। ध्यान से अनेक शारीरिक बीमारियाँ और मानसिक तनाव दूर होते हैं। ध्यान की स्थिति में शरीर में कार्बन डाई ऑक्साइड की उत्पत्ति कम हो जाती है। अतः ऑक्सीजन की भी कम आवश्यकता पड़ती है। ध्यान में मन के एकाग्र होने पर श्वाँस की गति धीमी पड़ जाती है फलतः स्नायु संस्थान पर नियन्त्रण हो जाता है। ध्यान का प्रत्यक्ष लाभ उच्च रक्त चाप वाले व्यक्तियों पर शीघ्र होता है जिससे बढ़ा हुआ रक्त चाप शीघ्र घट जाता है। ध्यान का प्रभाव ह्दय की गति पर भी पड़ता है ध्यान के प्रभाव से ह्रदय की गति स्वस्थ हो जाती है। ध्यान मस्तिष्क को ऊर्जा एवं प्रकाश देकर समस्त शारीरिक क्रियाओं (रक्त-प्रवाह, श्वाँस, ह्रदय स्पन्दन, चयापचय इत्यादि) को तथा मानसिक गति को पूर्णतः नियन्त्रित करने एवं सहज बनाने में सहायक होता है। ध्यान सांसारिक जीवन से विमुख करके मनुष्य को दिव्य जीवन की ओर उन्मुख कर देता है। ध्यान तनाव और अनिद्रा का अमोघ उपाय है। ध्यान के समय श्वांस की गति धीमी और गहरी होकर वायु-वृद्धि करता है। ध्यान का उद्देश्य भौतिक जगत से ऊपर उठकर दिव्य चेतना में निमग्न होता है। ध्यान से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। ध्यान मन की चंचलता के कारण नहीं हो पाता। इस चंचल मन को एकाग्र करने की साधना है ध्यान। ध्यान प्रत्येक साधना का आवश्यक अंग है। किसी भी मार्ग (कर्म, भक्ति अथवा ज्ञान) की सफलता के लिए ध्यान का अवलम्बन नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार वायु रहित स्थान में स्थित दीपशिखा स्थिर रहती है परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के संयत चित्त की वही दशा होती है। ध्यान में मन को आत्मा में स्थित करके परमात्मा के अतिरिक्त कुछ अन्य चिन्तन नहीं करना चाहिए। आज हर व्यक्ति अशान्त, चिन्तित एवं दुखी है जिसके फलस्वरूप वह हाई ब्लड प्रेशर, डिप्रैसन, टैन्शन, ह्रदयरोग, मधुमेह, कैन्सर आदि जैसे प्राणघातक रोगों से पीड़ित है। इन सबसे बचाव का तथा इनके होने पर ध्यान ही एक मात्र उपचार है। आस्ट्रेलिया के मनोचिकित्सक डा. एन्सली मेर्स ने ध्यान द्वारा कैन्सर के रोगियों को रोग मुक्त किया। ध्यान से मन निर्मल, निश्चल व शान्त हो जाता है। ध्यान से मन की बिखरी हुई ऊर्जा एकत्र होकर हमें हमारे लौकिक कार्यों में कुशलता प्रदान करती है शक्ति प्रदान करती है। ध्यान में सत्वगुण के तीव्रतम प्रकाश में बीमारियों के कीटाणु मर जाते हैं। **''न ध्यानात्परतरं पुण्यम्''** अर्थात् ध्यान से बढ़कर अन्य कोई पुण्य नहीं है। अतः **''ध्यान योग परो नित्यम्''** नित्य ध्यान का अभ्यास करो। वास्तव में स्वस्थ एवं सुखी शान्तिमय जीवन के मानसिक उद्वेगों एवं भावों को नियन्त्रित करने के लिए ध्यान नितान्त आवश्यक है। एक ध्यान योगी जैसे-जैसे ध्यान का अभ्यास करेगा त्यों-त्यों उसके स्वभाव से ही उसके संकल्प सत्य होने लगते हैं। ध्यान योग के अभ्यास से साधक की आत्मनिर्मल होती जाती है। और विवेक ज्ञान प्रगट होने लगता है। अन्तः करण की शुद्धि के लिए ध्यान करें। जीवन का रस, दिव्यता, सौन्दर्य तथा आनन्द ध्यान से प्राप्त होता है अतः जीवन में ध्यान के महत्त्व को समझकर आप सब ध्यान करो।

नोट :-उपर्युक्त लिखे ध्यान से मिलने वाले लाभ हमें तभी मिल सकते हैं जबकि हम कम से कम 1½ घण्टे अथवा अधिक से अधिक 3 घण्टे नित्य नियमित रूप से ध्यान करेंगे। ध्यान थोड़ी बहुत देर तक अथवा कभी कभार करने से उपरोक्त लाभों को प्राप्त करना संभव नहीं है। अकेले घर पर ध्यान करने से ध्यान में इतनी सफलता नहीं मिलती जितनी ध्यान केन्द्र में सामूहिक ध्यान करने से मिलती है।

* * *

मानव-जीवन

वैद्य मूलचन्द्र भारद्वाज

मनुष्य जीवन का उद्देश्य शरीर की साधना करते हुये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्राप्त करना है-

"धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।"

ऐसा विचार शास्त्रीय अध्ययन, सत्संग एवं सत्गुरु के बिना जागृत नहीं होता। सत्संग से ही विवेक का जन्म होता है- बिनु सत्संग विवेक न होई। बुद्धि तो कम अधिक हर व्यक्ति में होती है। बल्कि, कुत्सित कर्म करने वालों में और भी तीक्ष्ण बुद्धि होती है-कैसे जेब काटी जाय कैसे बैंकों से फरजी ड्राफ्ट भुनाये जायें कैसे लोगों को नई-नई युक्तियों से ठगा जाय आदि। परन्तु विवेक हर व्यक्ति में नहीं होता। विवेक के द्वारा ही सत-असत, नित्य-अनित्य, सार-असार, वास्तविक लाभ-हानि अपना हित व अहित आदि का निर्णय किया जा सकता है। विवेक सत्संग से ही मनुष्य को प्रकाश मिलता है।

जैसे सभी वस्तुऐं रहते हुए भी अँधेरे के कारण दिखाई नहीं पड़ती हैं प्रकाश हो जाने पर सारी वस्तुऐं यथावत् दीखने लगती हैं। इसी प्रकार सत्संग करने पर सारी बातें समझ में आकर स्पष्ट दीखने लगती हैं, जैसे-समय जा रहा है उम्र बीत रही है। जीवन, तेली के बैल की भाँति आँख पर पट्टी बाँध लाठ से सम्बन्ध जोड़ कोल्हू के चक्कर काटते हुए श्वांस लेना और जीवन के दिन पूरा करना नहीं है। जीने का अर्थ है बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उन्नति करते हुए सुस्वास्थ्य, सुख, शान्ति और आनन्द के साथ जीवन का संयापन करना।

जीवन का अर्थ है लोक, परलोक की विजय का सम्पादन करते हुए जीना। जीवन का अर्थ है व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और संसार में संजीवन का संचार करते हुए जीना। जीने का अर्थ धर्मपूर्वक अर्थ, की प्राप्ति करते हुए वर्ण, आश्रम, धर्म के कमनीय कर्मों का निर्वहन करते हुए दुःख से अत्यन्त निवृत्ति करके भगवत् प्राप्ति की संसाधना करना।

सत्संग करने पर ही यह बात समझ में आती है कि उम्र रूपी पूँजी जितनी हमारे पास है उतने ही समय तक हम जी सकते हैं। धन सम्पत्ति, जमीन, जायदाद आदि जीवन का आधार नहीं है। आयु बीत जाये तो पास में लाखों, करोड़ों, अरबों, असंख्यों की सम्पत्ति होने पर भी मरना पड़ेगा। धन सम्पत्ति व्यक्ति को जीवित नहीं रख सकती। इसके विपरीत आयु शेष है, पास में फूटी कौड़ी भी नहीं, बदन पर कपड़ा नहीं, रहने को जगह नहीं फिर भी कोई न कोई ऐसा ढंग निकल आयेगा कि हम जीवित रह जायेंगे।

इससे सिद्ध हुआ कि धन सम्पत्ति हमको अधिक समय तक जीवित नहीं रख सकती और यदि सम्पत्ति नहीं तो मर भी नहीं सकते। ये रही दो बातें एक हमारी आयु दूसरी धन सम्पत्ति। इसी प्रकार एक हमारी कामना (इच्छा) होती है दूसरी हमारी आवश्यकता (भूख) होती है। जैसे-उम्र और धन सम्पत्ति दोनों चीजें अलग-अलग हैं, उसी प्रकार कामना और आवश्यकता भी दोनों अलग-अलग हैं। दृष्टान्त के तौर पर शरीर को भूख लगती है यह शरीर की आवश्यकता है कामना नहीं, वासना नहीं, त्याज्य नहीं। परन्तु भोजन में हमें अमुक पदार्थ, रबड़ी, मलाई, मिठाई, खटाई आदि चाहिए यह कामना है त्याज्य है। भूख तो भोजन करने पर पूरी हो जायेगी परन्तु अमुक-अमुक पदार्थों को जो कामना है वह कभी पूरी होने वाली नहीं है।

महात्मा गांधी जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मैंने ऐसे भी आदमी देखे हैं जिनका भोजन करते-करते पेट भर जाता है और उसे फिर बाहर निकाल देते हैं फिर भोजन करते हैं पेट भर जाता है। पर उनकी जीभ का चटोरपना नहीं पूरा होता। पेट भर जाय ये शरीर की आवश्यकता है।

जैसे सड़क पर वाहन चलते हैं सड़क में गड्ढा हो जाय तो गाड़ी का पहिया उसमें फँस जायेगा गाड़ी आगे नहीं चलेगी। गड्ढे को मिट्टी, पत्थर, कंकरीट, रोड़ी आदि से भर देने पर गाड़ी चलती रहेगी। यह सड़क की आवश्यकता है। इसी प्रकार भूख शरीर की आवश्यकता है जो कि खाद्य पदार्थों से पूरी हो जायेगी। परन्तु भोजन में अमुक वस्तु चाहिए उसकी पूर्ति हो जाने पर भी कामना कभी पूरी नहीं होगी।

भूख रूपी आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं और मिटा सकते। परंतु कामना की पूर्ति नहीं कर सकते, उसे मिटा भी नहीं सकते हैं।

इच्छा भी दो प्रकार की होती है। एक हमारी संसार के पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा है वह कामना है। और जो परमात्मा प्राप्ति की इच्छा है वह स्वयं (आत्मा) की आवश्यकता है। यह आवश्यकता कभी मिटेगी नहीं प्रत्युत पूरी होगी। परन्तु संसार के पदार्थों की कामना कभी पूरी होगी ही नहीं।

अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों का राज्य मिल जाने पर भी कामना की पूर्ति कभी हो ही नहीं सकती। संसार की कामना विष है, विषम है, कूट हलाहल विष है और नारकीय देशों में ले जाने वाली अत्यन्त दुःखदायी है। आवश्यकता मधुराति मधुर अति आनन्ददायक है। आवश्यकता जाग्रत होने पर सम्पूर्ण कामना स्वयं मिट जाती है और आवश्यकता (परमात्मा) की प्राप्ति हो जाती है।

परमात्मा प्राप्ति की इच्छा कामना नहीं है यह तो स्वयं की आवश्यकता है। जैसे भूख लगी हो, दाल भात से पूरी कर लो, चाहे हलुआ, पूड़ी ले लो, चाहे रोटी दाल सब्जी दलिया खिचड़ी या फल-सब्जी ले लो। पेट भर जाये शरीर काम करेगा। यह शरीर की आवश्यकता है। पैट्रोल स्कूटर की कामना नहीं। उसकी आवश्यकता है पैट्रोल होगा स्कूटर चलेगा, नहीं होगा खड़ा रहेगा। इसी प्रकार स्वयं (आत्मा) की आवश्यकता (भूख) है परमात्मा प्राप्ति। परमात्मा की प्राप्ति हो जाने पर इस आवश्यकता की पूर्ति सदा के लिये हो जायेगी। परन्तु सांसारिक धन, सम्पत्ति, वैभव, सम्मान, भोग, ऐश्वर्य आदि क्यों न कितने ही मिल जाय उनकी कामना की पूर्ति कभी होगी ही नहीं।

प्रयाग दारागंज में एक लाला रहते थे। लक्ष्मी पुत्र होने पर भी धनहीन थे। परन्तु गंगाजी में स्नान करने और भगवान शंकर के मंदिर में जाकर जल चढ़ाकर पूजा करना उनका नित्य-नैमित्तक कर्म था। एक दिन भगवान शंकर एक सेठ के रूप में उन लाला से मिले। लाला ने अपनी सब व्यथा सुनाते हुए कहा कि हम साधनहीन बेरोजगार हैं बालकों को पेट भर भोजन भी नहीं मिल पाता है। यदि हमें दस-बीस रुपये मिल जाएँ तो हम खोमचा लगाकर अपने परिवार का पालन कर सकते हैं। तुरन्त आगन्तुक सेठ जी ने पचास रुपये दे दिये। रुपए पाकर लाला बहुत प्रसन्न हुआ। बाजार से थाल व कुछ सामान खरीदा खोमचा लगाकर काम आरम्भ कर दिया। काम चल निकला। कुछ दिनों में कुछ फेर हो गया।

एक दिन सेठजी को वही लाला मिल गये। उन्होंने कुशलता पूछी। लाला ने कहा वैसे तो

आपकी कृपा है, पर अब खौमचा उठाकर चलता फिरना असह्य हो गया है। यदि आपकी कृपा हो जाय तो एक दुकान ले लें और बैठे ही बैठे काम करते रहें। सेठजी ने पाँच-सौ रुपये तुरन्त निकाल कर दे दिये। लाला ने दुकान कर ली, काम करने लगे। कुछ दिनों में लाला की मध्यम-वर्गीय धनिकों में गणना होने लगी। एक दिन वही सेठ लाला को स्नान करते हुए मिले। बातचीत हुई। उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। अब हमारा लड़का भी कार्य करने लायक हो गया है। कुछ सम्पत्ति हमारे पास हो गई है और कुछ कहीं से सहायता मिल जाय तो एक मिल खोल लिया जाय जिससे काम आगे बढ़ जाय।

सेठजी ने मदद की, मिल खुल गया फिर भी तृप्ति नहीं। रात्रि में लाला को स्वप्न हुआ कि जिस सेठ से तुम बात करते हो वह भगवान शंकर हैं। अब तो प्रातःकाल उठकर उनकी प्रतीक्षा में बैठ गया। सेठजी आए उनके चरणों में गिरकर कहने लगा कि आपकी कृपा से धन की तो कमी नहीं पर अब इच्छा शासन करने की है मुझे राजा बना दो। भगवान शंकर समझ गए बोले यहाँ के या स्वर्ग लोग के। लाला ने कहा यहाँ से तो स्वर्गलोक का राजा बनना अच्छा है। स्वर्ग का राजा बना दो। भगवान ने कहा कि वह भी तो ब्रह्मा के आधीन है तो लाला बोला मुझे ब्रह्मा ही बना दो। भगवान ने कहा तुम्हारी तो कभी तृप्ति होगी ही नहीं तुम्हारी तृप्ति वहीं है जहाँ पर पहिले थे।

यह दृष्टान्त के रूप में लिखा गया है। परन्तु वास्तविक देखने में भी यही बात आती कि पूर्ति ही कामना को जन्म देती है।

मनुष्य को धन की कामना हुई उसने धन संग्रह किया। जब उसे स्त्री की इच्छा हुई उसने स्त्री का वरण किया और अपना धन सर्वस्व स्त्री को समर्पित कर दिया। वैभव की कामना हुई मनुष्य ने वैभव सम्पादन किया। अब उसे परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा हुई परमात्मा वरण किया और परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण वैभव त्याग दिया। कामना ही संग्रह कराती है और कामना ही दूसरी कामना की पूर्ति के लिये संग्रह किये हुए का त्याग कराती है। जिन्होंने शास्त्रीय अध्ययन व सत्संग नहीं किया वह इस बात को नहीं समझ सकते कि कामना और आवश्यकता ये दोनों अलग-अलग हैं इस बात को हर व्यक्ति आसानी से नहीं समझ सकेगा। समझने के लिए ध्यान देना होगा।

एक भूख होती है एक कामना होती है। भूख वस्तु की कामना होती है पर कामना आवश्यकता नहीं होती।

भूख भी दो प्रकार की होती है। एक तन की भूख, दूसरी मन की भूख। तन की भूख तो भोजन से पूरी हो जाती है। परन्तु मन की भूख कभी पूर्ण नहीं होती।

तन की भूख इतनी बड़ी आधसेर या सेर।
मूलचन्द्र मन की मिटत नहिं मिले सुवर्ण के ढेर।।

तन की भूख आवश्यकता है और मन की भूख कामना है। जब कभी हो आवश्यकता पूरी होगी और जब कभी हो कामना की निवृत्ति होगी।

परमात्म तत्व की इच्छा (आवश्यकता) पूरी होने वाली है और संसार के भोगों की तथा संग्रह करने की जो इच्छा है वह कभी भी पूरी होने वाली नहीं है। संसार में तो जितना मिल जाय उसी पर सन्तोष कर लेना चाहिए। यही सुख की एक मात्र कुंजी है।

परम लाभ सन्तोष है, परम सुख सन्तोष।
मूलचन्द्र सन्तोष बिन, पूरा होत न कोष।।

एक बार इन्द्र ने गुरु वशिष्ठ जी से पूछा कि गृहस्थियों को सुख कहाँ है वशिष्ठ जी ने कहा कि-

ममता परम दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम्।
संतोषात्परंनास्ति सुख स्थानं शचीपतै।।
-देवी भागवत

संतोष ही गृहस्थियों के लिए एक मात्र सुख का साधन है।

मूलचन्द्र इच्छा नहीं सबसे हों धनवान।
चाह जो होत कुबेरहू दारिद दीन महान।।

परन्तु सर्वत्र सन्तोष नहीं करना चाहिए।

मूलचन्द्र संतोष करि पत्नी, धन अरु खान।
इन तीनन में संतोष नहिं विद्या तप अरुदान।।

पत्नी, धन, भोजन में सन्तोष करना चाहिए और विद्या, भजन तथा दान में कभी सन्तोष नहीं करे जितना किया है उसे थोड़ा ही समझता रहे।

पर भूख लगी हो इसमें सन्तोष नहीं होता। भूख हो, प्यास लगी हो, उसमें सन्तोष कैसे किया जाय। प्यास लगी है, गला सूख रहा है, भीतर जलन मच रही है, तो वह जल मिलने पर ही शान्त होगी। अतः संतोष कामना के लिए किया जाता है। आवश्यकता के लिए नहीं।

आवश्यकता और कामना यह दोनों अलग-अलग हैं। इसका कारण यह है कि इस मानव शरीर में भी दो चीजें हैं। एक यह पंच भौतिक स्थूल शरीर, दूसरा जीव (आत्मा) जीव परमात्मा का अंश है। तर्क शास्त्र कहता है कि-

आत्माचेति द्विविध जीवात्मा, परमात्मा।

जो सांसारिक वासनाओं में लिप्त है वह जीव और जो अलग है वह परमात्मा। इससे जीव परमात्मा का अंशी हुआ और शरीर संसार का अंशी। इसलिये जीव को परमात्मा की भूख है और शरीर को संसार के पदार्थों की भूख है। परमात्मा की प्राप्ति होने पर जीव की भूख मिट जाती है परन्तु संसार के पदार्थों की प्राप्ति होने पर भी शरीर की भूख नहीं मिटती।

आवश्यकता की पूर्ति होती है और इच्छा की निवृत्ति होती है। विचार के द्वारा इच्छा की निवृत्ति हो जाती है किन्तु आवश्यकता की निवृत्ति विचार के द्वारा नहीं होती। कुछ समय के लिए चुप भले ही हो जाये पर अन्न-जल लिये बिना शरीर की भूख-प्यास नहीं मिट सकती। जाड़ा लगता है तो कपड़ा ओढ़े बिना जाड़ा मिट नहीं सकता क्योंकि यह शरीर की आवश्यकता है।

ऐसे ही परमात्मा की प्राप्ति स्वयं की आवश्यकता है। परन्तु इच्छायें कभी पूरी नहीं हो सकतीं। भोग भोगना और संग्रह करना ये दो इच्छायें न कभी किसी की पूरी हुई, न होंगी। मन की यह भूख कभी मिटने वाली नहीं है।

भोजन जीवन नारिधन जीवत तृप्ति न होय।
गये जा रहे जायेंगे तृप्ती सुना न कोय।।

कोई न कोई कार्य अधूरे रह जाते हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति कहते नहीं सुना कि मेरे सब काम पूरे हो चुके। केवल भगवान की शरण में जाने पर ही अधूरे काम भी स्वयं उसके पूरे हो जाते हैं कोई कार्य शेष नहीं रहता। भगवान की शरण जाये बिना कभी किसी की कामना पूरी हो ही नहीं सकती।

जो दश बीस पचास भये,
शत होंइ हजारन लाख मगेगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य,
पृथ्वी पति की चाह जगेगी।।
स्वर्ग पताल को राज करे,
तृष्णा अग्नि की आग लगेगी।
सुन्दर इक भक्ति के बिना,
शठ तेरी तो भूख कबहूँ न मिटेगी।।

जब हमारी धारणा परमात्मा की ओर चलने की होगी तो वैराग्य हो ही जायेगा। भोग और संग्रह करने की इच्छा ही नहीं होगी और परमात्मा की प्राप्ति हो जायेगी। इसी के लिए यह मानव शरीर मिला है। ✻ ✻ ✻

जीवन तत्व साधन

(स्वास्थ्य-चर्चा)

(पिछले अंक से आगे)

सौषुम्न नाड़ियाँ-

सुषुम्ना से नाड़ियों के ३१ जोड़े निकले है। ये सुषुम्ना से दो ओर से जुड़ी है और दोनों ओर के छिद्रों से निकलकर समस्त शरीर में फैल गई है। जिन दो भागों में जुड़ी रहती है उन्हें **पूर्व मूल** (Anterior) और पिछले को **पश्चिम मूल** (Posterior) कहते हैं।

सौषुम्न नाड़ियाँ और उनकी संख्या नीचे लिखी है-

१. कंठ देशीय (८)

२. वक्ष देशीय (१२)

३. कटि स्थानीय (४)

४. त्रिकास्थि स्थानीय (५)

५. गुदास्थि (१)

नाड़ी संस्थान का पूरा हाल चीर-फाड़ के बिना पूरा नहीं मालूम हो सकता, तथापि इनके कार्यों को संक्षेप में बताया जाता है। वृहत् मस्तिष्क में तीन प्रधान कार्य होते है- ज्ञान, भाव और इच्छा।

मतलब यह है कि लोगों में तब तक ही ज्ञान रहता है जब तक मस्तिष्क जीवित है और यह चेतना मस्तिष्क में रक्त की उपस्थिति पर निर्भर करती है। स्मरण के सभी कार्य मस्तिष्क की क्रिया के ही परिणाम है। भाव केवल ग्रहण किया हुआ पदार्थ है। उदाहरण के लिए यदि हम चूना खा जायें तो दर्द होता है परन्तु मस्तिष्क में भी बेचैनी होती है। सभी पेशियों की गतियों पर मस्तिष्क का शासन रहता है। हम अपने हाथ को हिलाने या रुक जाने की आज्ञा दे सकते हैं। ग्रन्थियों की क्रिया भी इसी तरह मस्तिष्क की ही क्रिया है। यहाँ तक की बढ़िया भोजन देखने पर हमारे मुँह में पानी भर आता है। इस तरह की गति को **परावर्तिक क्रिया** कहते है। इसका अर्थ यह है कि एक ऐसा भी भाव प्रवण पटल है जो मस्तिष्क से अलग है। जिसमें जब उत्तेजना होती है तो वह भाव मस्तिष्क में भेज देता है और उसके बाद मस्तिष्क पेशियों व ग्रन्थियों को जैसा आदेश देता है वैसा ही वे कार्य करती है। लघु मस्तिष्क रक्त में पेशियों की गति का सहयोग देकर समता की रक्षा करता है।

सुषुम्ना से निम्नलिखित क्रियायें होती है-

१. हृदय की धड़कन।

२. रक्त वाहिनियों में खिंचाव बनाये रखना।

३. श्वास-प्रश्वास की क्रिया।

४. निगलना, बोलना, लार स्राव, प्रसव।

मेरुदण्ड से दो क्रियायें होती है-

(क) शरीर सम्बन्धी कार्य-

१. पेशियों की शक्ति में बल भरने का कार्य।

२. मल द्वार की पेशी की क्रिया को ठीक रखना।
३. मूत्राशय-ग्रीवा व मल-द्वार-ग्रीवा की क्रिया की रक्षा।
४. जरायु में संकोचन पैदा करना।
५. लिंग में उत्तेजना पैदा करना।

(ख) शरीर के किसी स्थान अथवा यन्त्र से जो भाव या अवस्था मालूम हो उसकी सूचना मस्तिष्क को देना।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे शरीर में जितने क्रिया-कलाप होते हैं उनका शासनकर्ता नाड़ी संस्थान है। यदि नाड़ियाँ शक्तिहीन हो जावें या अपना कार्य सुचारू रूप से न करें तो शरीर के अंग-प्रत्यंग रोगी हो जाते हैं। गठिया वात, वायु पक्षाघात आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। नाड़ी संचलन की क्रिया ऐसी प्रभावशालिनी है कि इसको करने से समूचे नाड़ी संस्थान में बिजली की लहर दौड़ जाती है। वे सचेत होकर अपना काम यथार्थ रूप से करने लगती हैं। यदि नाड़ी संस्थान का कोई भाग अकर्मण्य हो गया है तो इस नाड़ी संचालन क्रिया से वहाँ पर बराबर झटके लगते हैं और थोड़े दिनों में वे ठीक होकर काम करने लगते हैं।

हमारे मेरुदण्ड में हड्डियों की लड़ी जुड़ी हुई है जिन्हें कशेरुका (Vertebra) कहते हैं। ये संख्या में ३२ हैं अर्थात्

७ गर्दन में
१२ पृष्ठ भाग में
५ कटि प्रदेश में
५ त्रिकास्थि में
३ गुदास्थि में

वैज्ञानिकों का कहना है कि जब शरीर में कोई रोग होता है तो कोई न कोई कशेरुकायें विकृत या टेढ़ी हो जाती हैं। योगसाधन में बताया जाता है कि आसन लगाते समय मेरुदण्ड को सीधा रखना चाहिए। जो लोग मेरुदण्ड को झुकाकर बैठते हैं उनकी कशेरुकायें विकृत हो जाती हैं। मेरुदण्ड जब तक सीधा व लचीला रहता है तब तक वृद्धावस्था पड़ जाती है। और उनमें टेढ़ापन आ जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत एक **आस्टोपैथिक चिकित्सा** प्रणाली है। इस चिकित्सा पद्धति को जानने वाले भारत में कुछ ही डाक्टर हैं। विदेशों में इसके अच्छे-अच्छे डाक्टर हैं और इस प्रणाली के द्वारा बड़े भयंकर से भयंकर रोग भी दूर किये जाते हैं। आस्टोपैथी वालों का कहना है कि शरीर के किसी भी भाग में किसी प्रकार का रोग होने पर मेरुदण्ड की एक या अधिक कशेरुकायें विकृत व टेढ़ी हो जाती हैं और जब तक उन्हें ठीक नहीं किया जायेगा जब तक रोग जा नहीं सकता है। आस्टोपैथी में चिकित्सक रोगी को लिटाकर उसकी मेरुदण्ड की हड्डियों पर हाथ की अंगुलियों से मालिश करता है। रोग के लक्षणों को देखकर चिकित्सक जान लेता है कि कौन सी कशेरुका टेढ़ी हो गई है? चिकित्सक अपनी कुशल अंगुलियों से उन हड्डियों को यथार्थ स्थिति में ले आता है और धीरे-धीरे रोग दूर हो जाता है। मालिश का कार्य दो चार या दस दिन तक करना पड़ता है। रोग की जड़ता के अनुसार उसकी आस्टोपैथिक चिकित्सा की जाती है।

आस्टोपैथी की चिकित्सा सीखने के लिए डाक्टरों को विदेश जाना पड़ता है तथा चार-पाँच साल का कोर्स पास करके वे इस योग्य बनते हैं कि रोगी का इलाज कर सकें। इसके बाद उनकी अंगुलियाँ इतनी सक्षम हो जाती है कि रोग की जड़ का पता लगा लेवें और उनकी विधिपूर्वक मालिश करके उन्हें ठीक कर देवें।

हमारे महाप्रभु जी ने जीवन तत्व साधन की आठवीं क्रिया **नाड़ी संचालन** का आविष्कार करके यह महान् उपकार किया है कि मनुष्य बगैर किसी आस्टोपैथ की शरण में गये स्वतः अपना इलाज करके स्वस्थ बन जावे। नियमित रूप से पूर्ण समय तक नाड़ी संचालन की क्रिया करते रहने से विकृत केशरुकायें सीधी व यथार्थ स्थिति में आ जाती है और रोग अपने आप दूर हो जाता है। इस क्रिया को बराबर करने वाले साधक के मेरुदण्ड की कशेरुकायें सीधी बनी रहती है और उनमें कोई टेढ़ापन नहीं आता। अतः किसी रोग के होने की संभावना नहीं रहती है। यह क्रिया बड़ी विचित्र लाभकारी व प्राणदायिनी है, क्योंकि नाड़ी संस्थान के ठीक रहने पर जीवनी शक्ति पर्याप्त रूप में प्राप्त होती रहती है।

उत्क्षेपण

जीवन तत्व साधन की नवीं व अन्तिम क्रिया का नाम **उत्क्षेपण** है। इसको करने के लिए सीधे खड़े हो जाइये और अपने हाथ व पैरों को क्रमशः झटका दीजिए। पहले दाहिने हाथ व दाहिने पैर को एक साथ झटका दीजिए। फिर बायें हाथ और बायें पैर को एक साथ झटका दीजिए। इसी तरह बारी-बारी से दोनों हाथों व पैरों को झटका देना चाहिए इस क्रिया को केवल एक या दो मिनट तक करना चाहिए। इससे शरीर में एक प्रकार की नई चेतना-सी आ जाती है और साधक सचेत होकर यथार्थ स्थिति में आकर अन्य कार्यों के लिए तैयार हो जाता है।

हमारा जो शरीर दिखाई पड़ रहा है वह तो केवल स्थूल शरीर है। इसके अतिरिक्त **सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर** भी है। तीनों शरीरों में पाँच कोष है। स्थूल शरीर में **अन्नमय** कोष है तथा सूक्ष्म शरीर में **प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय** कोष है और कारण शरीर में **आनन्मय कोष** रहता है। स्थूल शरीर के अंगों के सम्बन्ध में हम पिछले लेखों में बता आये हैं। उत्क्षेपण की क्रिया से तीनों शरीरों में सामंजस्य उत्पन्न हो जाता है। हाथ-पैरों को झटकने से सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों में चेतना उत्पन्न हो जाती है और वे सक्रिय हो कर काम करने लगते है। आधार चक्र से लेकर आज्ञा चक्र तक में नवीन स्फूर्ति भर जाती है। हम प्रस्तुत लेख में सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों के बारे में विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे ताकि उत्क्षेपण से होने वाले लाभ को जाना जा सके। जीवन तत्व साधन की यह क्रिया देखने व करने में बहुत साधारण मालूम देती है। किन्तु इसका प्रभाव आश्चर्यजनक है। यथाविधि इस क्रिया को करने वाले साधक कुछ दिनों में ही यह अनुभव करेंगे कि हाथ-पैरों के मामूली झटके कितना प्रभाव दिखाते हैं और सारे शरीर में विद्युत प्रवाह चलने लगती है। अब हम सूक्ष्म शरीर के तीनों कोषों का वर्णन करेंगे।

* * *

प्रिय गुरु भाई बहिन,

जय गुरुदेव !

'सिद्धयोग' का यह संयुक्तांक (जनवरी-फरवरी २००१) आपकी सेवा में प्रस्तुत है। अपरिहार्य कारणों से जनवरी अंक का प्रकाशन बाधित हुआ। जिसका हमें दुःख है। श्री गुरुदेवजी की आज्ञानुसार योग प्रचार की दृष्टि से सिद्धयोग में केवल योग संबंधी सामग्री का प्रकाशन किया जाता है और विज्ञापनों के प्रकाशन में निर्मुक्तता की नीति का निरन्तर परिपालन हो रहा है। आज के इस वित्त प्रधान कालखण्ड में अपनी इसी वचनबद्धता पर सिद्धयोग यदि अडिग है, तो यह केवल आप गुरुभाई-बहिनों के सतत् सहयोग के बल पर ही।

पिछले एक वर्ष के अन्तराल में कागज के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि के वशीभूत अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं ने मूल्यवृद्धि की है। सिद्धयोग ने इस मूल्यवृद्धि के भार से अब तक अपने पाठकों को अप्रभावित रखा है। किन्तु अब पत्रिका का वार्षिक शुल्क रु. ७५ से बढ़ाकर रु. ८५ द्विवार्षिक रु. १५० तथा आजीवन रु. ८००/- करने के लिए हम विवश हैं। विश्वास है समस्त पाठकों का पारस्परिक सहयोग हमें पूर्ववत् प्राप्त होता रहेगा। धन्यवाद

—सम्पादक

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	—	श्री सिद्धगुफा, संवाई, आगरा (उ०प्र०)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम	—	मासिक
3. मुद्रक का नाम	—	विनय गजानन शर्मा
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता	—	कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलां, ताजगंज, आगरा
4. प्रकाशक का नाम	—	विनय गजानन शर्मा कृते सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा)
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता	—	श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (आगरा)
5. सम्पादक का नाम	—	आचार्य ब्र. पातलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता	—	श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (आगरा)
6. स्वत्वाधिकारी	—	ब्रह्मलीन अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं, विनय गजानन शर्मा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

दिनांक — 28 फरवरी 2001

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन
विनय गजानन शर्मा

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008

जनवरी-फरवरी 2001

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ------------------------------

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।।

(मुण्डकोपनिषद् १/१/८)

परब्रह्म संकल्परूप तप से उपचय (वृद्धि) को प्राप्त होता है। उससे अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से क्रमशः प्राण, मन, सत्य (पाँच महाभूत) समस्त लोक और कर्म तथा कर्मों से अवश्यम्भावी सुख:दुख रूप फल उत्पन्न होता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक–विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326